45

आगम-परिचय

-: लेखक :-
परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

45
आगम-परिचय

卐 लेखक 卐

परम शासन प्रभावक व्याख्यान वाचस्पति पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के तेजस्वी शिष्यरत्न भावाचार्य तुल्य, प्रशांतमूर्ति, बीसवी सदी के महान योगी पूज्यपाद **पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के चरम शिष्यरत्न, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्यपाद

आचार्य श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

संपादक

पूज्य मुनिराज **श्री स्थूलभद्रविजयजी म.सा.**

239

卐 प्रकाशन 卐

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे.व्यु. बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002.

Cell 8484848451 (only whatsapp)

हिन्दी आवृत्ति : प्रथम • **मूल्य :** 200/- रुपये • **प्रतियाँ :** 1000
दि. 26-11-2023 • **विमोचन स्थल :** मुनिसुव्रत स्वामी जैन मंदिर श्वे.मू. जैन संघ, निगडी, (पूना)-411 044. • **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक
प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

अध्यात्मयोगी नवकार विशेषज्ञ, **पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा हिन्दी भाषा में आलेखित 239वीं पुस्तक **'45 आगम परिचय'** का प्रकाशन करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

45 आगम तो जैन शासन की आधार शिला है । इन्हीं आगम ग्रंथों के आधार पर जैन शासन की समग्र व्यवस्थाओं का सफल संचालन होता है ।

यद्यपि ये सारे आगम प्राकृत भाषा में गणधर-पूर्वधर एवं पूर्वाचार्य द्वारा रचे गए हैं, उन आगमों का पढने का एक मात्र अधिकार गुर्वाज्ञा प्राप्त योगोद्वहन किए हुए महात्माओं को ही है ।

पूर्वकाल में साध्वीजी भगवंतों को 11 अंग पढने का अधिकार था । **पू. वज्रस्वामीजी** ने पालने में झुलते-झुलते ही साध्वीजी म. के श्रीमुख से सुनकर 11 अंग कंठस्थ कर लिये थे । वर्तमान में साध्वीजी भगवंतों को 11 अंगों में से सिर्फ एक ही अंग के योगोद्वहन करने व पढने की अनुज्ञा है । आचारांग सूत्र के योगोद्वहन करने व पढने की अनुज्ञा है ।

गृहस्थों को सिर्फ आवश्यक सूत्र व मुमुक्षु को दश वैकालिक के चार अध्ययन पढने का अधिकार है ।

शस्त्र व शास्त्र दोनों योग्य आत्मा को ही लाभ करते हैं ।

सैनिक व पुलिस के हाथ में रहा शस्त्र रक्षण का काम करता है, जब कि गुंडे या बालक के हाथ में रहा शस्त्र स्व-पर का नुकसान ही करता है ।

इसी प्रकार शास्त्र भी सिर्फ अधिकारी को ही लाभ करते है ।

अनधिकारी के हाथ में आया शास्त्र भी लाभ के बदले नुकसान का ही काम करता है ।

जिनेश्वर भगवंत की वाणी स्वरुप ये आगम-शास्त्र तो अनंत अर्थों से भरे हुए है । उनकी संपूर्ण महिमा का गान करने में तो श्रुतधर-पूर्वधर भी समर्थ नहीं है । ऐसे महान जिनागमों का बहुत ही संक्षेप में सरल व सुबोध हिन्दी भाषा में परिचय **पू.आ.श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** ने तैयार किया है ।

और उन्हीं के शिष्यरत्न नवोदित लेखक **पू.श्री स्थूलभद्रविजयजी म.सा.** ने बहुत ही सुंदर रंग से संपादन किया है, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है । सभी पाठकवृंद इस अमूल्य कृति का स्वाध्याय कर जिनागमों के प्रति आदरवाले बनें, इसी मंगल-कामना के साथ ।

लेखक की कलम से...

आज में 2580 वर्ष पूर्व वैशाख शुक्ल-11 के शुभ दिन भगवान महावीर स्वामी ने पावापुरी की धन्यभूमि पर देवता रचित समवसरण में **इन्द्रभूति-गौतमस्वामी आदि मुख्य 11 गणधर, 4400 साधु, चन्दनबाला आदि साध्वी को दीक्षा प्रदान कर तथा** शंख आदि श्रावक और सुलसा आदि श्राविकाओं को सम्यक्त्व सहित बारह व्रत प्रदान कर चतुर्विध श्री संघ की स्थापना की थी ।

शासन स्थापना के समय सभी ग्यारह गणधरों ने द्वादशांगी की रचना की, जो सूत्र से भिन्न होने पर भी अर्थ से एक थी । आयुष्य एवं छद्मस्थ पर्याय अधिक होने से पंचम गणधर श्री सुधर्मास्वामीजी को भगवान महावीरस्वामीजी ने गण की अनुज्ञा एवं अपनी पाट सौंपी ।

उनके द्वारा रचित द्वादशांगी तथा भगवान महावीर स्वामी के 14000 शिष्यों द्वारा रचित प्रकीर्णक सूत्र आदि श्रुतज्ञान की विरासत अनेक महापुरुषों ने अपने वृषभ स्कंधों पर वहन की ।

कालक्रम से आनेवाली अनेक प्राकृतिक आपदाओं और विनाशकारी आक्रमणों से श्रुतज्ञान का सागर, गागर जितना रह गया, बाकी सब काल कवलित हो गया । हुण्डा अवसर्पिणी के इस पांचवे दुषम काल में भस्मग्रह के प्रभाव से प्रभु शासन पर खूब हमले आये है । इन सारे हमलों में प्रभु के शासन की ज्योत को हम तक पहुचाने के कार्य में अनेक महापुरुषों ने खून-पसिना एक किया है । अनेको ने आत्म बलिदान दिये है । अनेको ने श्रुत समुद्धार किये है और अनेक ने पुनः श्रुत का सर्जन कर हम जैसे जीवों पर बड़ा उपकार किया है । कहा है–

``विषम काल जिनबिंब जिनागम, भवियण कुं आधारा''

भव सागर में गोते लगाने वाली हमारी आत्मा को विषम काल में यदि कोई सहारा है तो वह मात्र **जिन प्रतिमा** एवं **जिनागम** का । इनके सहारे बिना इस भवसागर से हमारी आत्मा का उद्धार संभव नहीं है ।

एक समय जैन धर्म के कट्टर द्वेषी **हरिभद्र पुरोहित** की मान्यता थी कि ``आपत्ति के प्रसंग में हाथी के पैरों तले कुचल कर मर जाना अच्छा है, परंतु अपने प्राणों को बचाने के लिए जैन मंदिर में पाँव नहीं रखूंगा ।'' वे ही जब जैन धर्म के परिचय में आये, दीक्षा स्वीकार की, जैनागमों के रहस्य समझे, तब 1444 धर्म ग्रंथों की रचना करने वाले **सूरि पुरंदर श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी** बने । संबोध प्रकरण में जैनागम की महिमा गाते हुए वे कहते है–

``कथं अम्हारिसा जीवा, दुसमादोस दुसिया ।
हा अणाहा कहं हुंतो, जइ न हुंतो जिणागमो।।''

अर्थात् – ``यदि प्रभु के वचनों को बताने वाले जिनागम न होते तो इस दुषम काल के दोष से दूषित बने हमारे जैसे जीवों का क्या हाल होता ? जिनागम के बिना हम अनाथ होते ।''

पुनः षोडषक ग्रंथ में उन्होंने जिनवचन की महिमा गान करते हुए कहा है–

अस्मिन् हृदयस्थे सति हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनीन्द्र इति ।
हृदयस्थिते च तस्मिन्नियमात् सर्वार्थ संसिद्धिः ।।

अर्थात् – ***``जिनवचन की आराधना ही धर्म है और जिनवचन का विरोध ही अधर्म है । जिन वचन ही धर्म का रहस्य और सर्वसार है, क्योंकि लोक में अन्तरात्मा को सन्मार्ग प्रवर्तक जिनवचन ही है । जिनवचन में ही धर्म है । सर्वज्ञ के वचन सबसे श्रेष्ट है । जिनवचन हृदयस्थ होने पर वास्तव में सर्वज्ञ परमात्मा ही हृदयस्थ है । इनके हृदय में रहने पर समस्त अर्थ की सिद्धि है ।''*** इस तरह अनेक महापुरुषों ने आगम ग्रंथों की महिमा का सुन्दर गान किया है ।

बारह अंग

श्री नंदीसूत्र की चूर्णि में, चूर्णि-कर्ता श्री जिनदास गणि ने द्वादश अंगवाले एक स्वस्थ पुरुष के साथ तुलना कर आगम पुरुष का परिचय दिया है । स्वस्थ पुरुष के शरीर में मुख्य रुप से बारह अंग होते है, वैसे ही यहाँ आगम पुरुष को बारह अंग वाला बताया है ।

पुरुष के अंग और उन स्थानों पर अनुमानित आगम

1) दाहिना पाँव	–	आचारांग सूत्र
2) बाँया पाँव	–	सूत्रकृतांग सूत्र
3) दाहिना घुटना	–	स्थानांग सूत्र
4) बाँया घुटना	–	समवायांग सूत्र
5) दाहिनी जंघा	–	व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र
6) बायी जंघा	–	ज्ञाता धर्म कथांग सूत्र
7) नाभि	–	उपासक दशांग सूत्र
8) सिना	–	अंतकृद् दशांग सूत्र
9) दाहिना हाथ	–	अनुत्तरोपपातिक सूत्र
10) बाँया हाथ	–	प्रश्न व्याकरण सूत्र
11) गर्दन	–	विपाक सूत्र
12) सिर	–	दृष्टिवाद

जगत् में रहे समस्त श्रुत ज्ञान का समावेश इन बारह अंग में हो जाता है । इन बारह अंग के ज्ञाता को श्रुतकेवली कहते है । केवली भगवंत अपने केवलज्ञान के प्रकाश में देखकर पदार्थ का जैसा वर्णन कर सकते है, वैसा ही वर्णन श्रुतज्ञान के बल से श्रुतकेवली कर सकते है ।

आगम-वाचनाएँ

आगम शास्त्रों के बोध के लिए श्रमण-संघ में नियमित रुप से आगम वाचनाएँ होती रहती हैं, फिर भी भगवान महावीर के शासन में श्रुत के संरक्षण एवं उस श्रुत को व्यवस्थित करने के लिए समय-समय पर अनेक विशिष्ट आगम वाचनाएँ भी हुई हैं, जो इस प्रकार हैं–

(1) पाटलिपुत्र आगम वाचना–वीर प्रभु के निर्वाण के 160 वें वर्ष में स्थूलभद्रजी की शुभ निश्रा में पाटलिपुत्र में समस्त श्रमण संघ इकट्ठा हुआ था । इस समय नंदराजा के राज्य में 12 वर्ष तक भयंकर अकाल पड़ा था, इसके परिणामस्वरूप काफी श्रुत विस्मृत हो चुका था, अतः श्रमण संघ में जिसके पास जो स्कंध, उद्देश, अध्ययन आदि था, उन्हें एकत्र कर पुनः वाचना की गई । इस वाचना द्वारा आचारांग सूत्र आदि 11 अंगों को व्यवस्थित किया गया ।

उस समय 12 वाँ अंग दृष्टिवाद लगभग लुप्त हो चुका था, उसके ज्ञाता सिर्फ भद्रबाहु स्वामीजी थे, जो उस समय नेपाल देश में महाप्राण नाम का ध्यान कर रहे थे। श्रमण संघ ने मिलकर स्थूलभद्र आदि 500 मुनियों को दृष्टिवाद सिखने के लिए भद्रबाहु स्वामीजी के पास भेजा। परंतु उनमें से सिर्फ स्थूलभद्रस्वामी ही 10 पूर्वों का सूत्र व अर्थ से व शेष 4 पूर्वों का मूल से अध्ययन कर पाए।

(2) उज्जयिणी वाचना–वीर निर्वाण के 269 वें वर्ष में संप्रतिराजा के शासन में पुनः 12 वर्ष का भयंकर अकाल पडा। अकाल के कारण श्रुत का विस्मरण होना स्वाभाविक था। अतः संप्रति महाराजा की प्रार्थना से वी.सं. 291 के आसपास आर्य सुहस्तिसूरिजी म. की निश्रा में आगम वाचना हुई और पुनः श्रुत का समुद्धार किया गया। यह वाचना **उज्जयिणी वाचना** के नाम से प्रख्यात हुई।

(3) कलिंग वाचना–वीर निर्वाण के 300 वर्ष बाद कलिंग देश में सम्राट् खारवेल की प्रार्थना से उदय पर्वत पर आर्य सुस्थितसूरिजी तथा आर्य सुप्रतिबद्धसूरिजी की निश्रा में पुनः आगमों को व्यवस्थित करने के लिए श्रमण संघ इकट्ठा हुआ और आगम वाचना हुई।

(4) दशपुर वाचना–वीर निर्वाण के 592 वर्ष में दशपुर नगर में आर्यरक्षितसूरिजी म. की निश्रा में आगम वाचना हुई। इस आगम वाचना द्वारा समस्त आगमों को द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग और धर्मकथानुयोग में विभाजित किया गया। इसके साथ ही आगमों की चाबी रूप **'अनुयोग द्वार'** सूत्र की रचना भी की गई।

(5-6) माथुरी और नागार्जुनीय वाचना–श्री नंदीसूत्र की चूर्णि के अनुसार वीर प्रभु के निर्वाण की नौवीं सदी में पुनः 12 वर्ष का भयंकर अकाल पड़ा था। इस अकाल से काफी श्रुत विस्मृत हो गया–

दुष्काल के कारण साधु भी अलग-अलग विचरण करने लगे, परिणाम स्वरूप वाचना, स्वाध्याय, पुनरावर्तन आदि न होने से काफी श्रुत नष्ट हो गया। पुनः सुकाल पड़ने पर वीर सं. 827 से 840 के बीच स्कंदिलाचार्य की निश्रा में मथुरा नगरी में श्रमण संघ इकट्ठा हुआ और जिसे जो याद था, उसे संकलित

कर सभी कालिक श्रुत को व्यवस्थित किया गया ।

इस श्रुत उद्धार को **माथुरी वाचना** कहा जाता है ।

'कथावली' ग्रंथ के अनुसार इसी काल दरम्यान वल्लभीपुर नगर में भी आचार्य श्री नागार्जुन की निश्रा में वाचना हुई, जो **नागार्जुनीय वाचना** के नाम से प्रख्यात हुई ।

काल की दुःषमता के कारण जिनप्रवचन का उच्छेद जानकर नागार्जुन और स्कंदिलाचार्यजी ने श्रुत को ग्रंथस्थ किया था ।

माथुरी व नागार्जुनीय वाचना भिन्न-भिन्न स्थलों में होने के कारण और दुर्भाग्य से दोनों वाचनादाताओं का पुनः मिलन नहीं होने से दोनों वाचनाओं में जो पाठभेद थें, वे वैसे के वैसे ही रह गए ।

(7) वल्लभीपुर वाचना–वीर प्रभु के निर्वाण की 10 वीं सदी में 12 वर्ष के भयंकर दुष्काल के कारण पूर्व परंपरा से प्राप्त श्रुत भी छिन्न-भिन्न हो गया । उस समय वीर सं. 980 विक्रम संवत् 510 में वल्लभीपुर में श्री देवर्द्धिगण क्षमाश्रमण के सान्निध्य में 500 आचार्य इकट्ठे हुए और जिसे जो याद था, उसे संकलित कर अपनी तीव्र मेधा से 1 करोड़ ग्रंथ संकलित किए गए । 84 आगमों को लिपिबद्ध किया गया । इस कार्य में 13 वर्ष का समय लगा ।

श्रुत अर्थात् आगम । ये आगम तीन प्रकार के हैं-

1. आत्मागम :- तीर्थंकर परमात्मा के उपदेश को आत्मागम कहते हैं, क्योंकि वह उपदेश स्वयं उनका है ।

2. अनंतरागम :- तीर्थंकर परमात्मा के मुख से त्रिपदी का श्रवण कर गणधर भगवंत जिस सूत्र की रचना करते हैं, वह अनंतर आगम है । प्रभु के साथ उनका प्रत्यक्ष संबंध होने से बीच में अंतर नहीं है, अतः वह अनंतर आगम है ।

3. परंपरागम :- गणधर भगवंतों के बाद में हुए आचार्यों ने गणधर भगवंतों की वाणी के अनुसार जिन सूत्रों की रचना की है, वह सब परंपरागम है ।

इन आगम ग्रंथों के पाँच अंग कहलाते हैं, जिसे पंचांगी भी कहा जाता है । आगम को मानना अर्थात् पंचांगी को मानना । मूल सूत्र को स्वीकार करना और उन सूत्रों पर विरचित टीका आदि को स्वीकार नहीं करना, यह कदापि उचित नहीं है ।

पंचांगी का स्वरूप

1. मूल सूत्र :- तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने केवलज्ञान के बल से जगत् में रहे सभी पदार्थों के सभी पर्यायों को प्रत्यक्ष जानते-देखते हैं और जगत् के जीवों के हित के लिए उसका उपदेश भी देते हैं। प्रभु के उस उपदेश को गणधर भगवंत सूत्र रूप में गूंथते हैं। उसे **मूल सूत्र** कहा जाता है। 10 से 14 पूर्वधर विरचित ग्रंथ को भी **'सूत्र'** कहा जाता है। वर्तमान में उपलब्ध **मूल सूत्रों** के रचयिता पंचम गणधर श्री सुधर्मास्वामीजी है।

2. निर्युक्ति :- सूत्र से संबंधित पदार्थों का नय, निक्षेप, अनुगम आदि द्वारा निरूपण कर सूत्र का स्वरूप समझाया जाता है, उसे निर्युक्ति कहते हैं। निर्युक्ति की गाथाएँ प्राकृत भाषा में होती हैं और उसके रचयिता चौदह पूर्वधर महर्षि होते हैं। वर्तमान में चौदह पूर्वधर महर्षि **भद्रबाहुस्वामीजी** के द्वारा विरचित अनेक निर्युक्तियाँ उपलब्ध हैं।

3. भाष्य :- सूत्र और निर्युक्ति में जो मुख्य बातें कही हों, उन्हें संक्षेप में स्पष्ट रूप में समझाया जाता है, उसे भाष्य कहते हैं। वर्तमान में **जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण,** संघदास गणि क्षमाश्रमण आदि महापुरुषों के द्वारा कई आगम ग्रंथों पर विरचित भाष्य उपलब्ध हैं।

4. चूर्णि :- सूत्र, निर्युक्ति और भाष्य में कहे गए पदार्थों को स्पष्ट रूप से समझाया जाता है, उसे चूर्णि कहते हैं। चूर्णि मुख्यतया प्राकृत भाषा में होती है, कहीं-कहीं पर संस्कृत भाषा का मिश्रण भी देखने को मिलता है। चूर्णिकार के रुप में जिनदास गणी, आ. अगस्त्यसिंहसूरिजी तथा आ. सिद्धसेन गणी प्रसिद्ध है।

5. वृत्ति :- सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि आदि को लक्ष्य में रखकर उनमें रहे पदार्थों के विशेष स्पष्टीकरण के लिए अनेक ज्ञानी महापुरुषों ने आगम ग्रंथों पर अनेक टीकाएँ रची हैं। टीकाकार में **पू. शीलांकाचार्य, पू. हरिभद्रसूरिजी, पू. अभयदेवसूरिजी** आदि प्रसिद्ध है।

वर्तमान में विद्यमान सभी आगम ग्रंथों पर निर्युक्ति, भाष्य आदि उपलब्ध नहीं हैं। काल के प्रभाव से जैनागम संबंधी बहुतसा साहित्य नष्ट हो चुका है, फिर भी जो कुछ बचा है, उसके संरक्षण के लिए हमारा प्रयास होना ही चाहिए।

वर्तमान में विद्यमान आगम पंचांगी

मूल	आगम	वृत्ति प्रमाण	वृत्तिकार	मूल प्रमाण	निर्युक्ति	भाष्य	चूर्णि
1.	आचार	12000	शीलांकाचार्य, अजितदेवसूरि	2554	450	—	8300
2.	सूत्रकृत	12850	शीलांकाचार्य, हर्षकुलगणि साधुरंगगणि	2100	265	—	9900
3.	स्थान	14250	अभयदेवसूरि नगर्षि गणि सुमतिकल्लोल	3700	—	—	—
4.	समवाय	3575	अभयदेवसूरि	1667	—	—	—
5.	भगवती	18616	अभयदेवसूरि हर्षकुलगणि दानशेखरसूरि	—	—	—	3114
6.	ज्ञाताधर्मकथा	3800	अभयदेवसूरि	—	—	—	—
7.	उपासकदशा	800	अभयदेवसूरि	812	—	—	—
8.	अंतकृत दशा	400	अभयदेवसूरि	900	—	—	—
9.	अनुत्तरोपपातिक	100	अभयदेवसूरि	192	—	—	—
10.	प्रश्नव्याकरण	5630	अभयदेवसूरि	1300	—	—	—
11.	विपाकश्रुत	900	अभयदेवसूरि	1250	—	—	—
12.	औपपातिक	3125	अभयदेवसूरि	1167	—	—	—
13.	राजप्रश्नीय	3700	मलयगिरिसूरि	2120	—	—	—
14.	जीवाभिगम	14000	मलयगिरिसूरि	4700	—	—	1500
15.	प्रज्ञापना	16000	मलयगिरिसूरि	7787	—	—	—
16.	सूर्यप्रज्ञप्ति	9000	मलयगिरिसूरि	2296	—	—	—
17.	चंद्रप्रज्ञप्ति	9100	मलयगिरिसूरि	2300	—	—	—
18.	जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति	18000	शांतिचंद्र उपा.	4454	—	—	—
19.	निरयावलिका	600	चंद्रसूरि	1100	—	—	—
20.	कल्पावतंसिका	—	चंद्रसूरि	—	—	—	—
21.	पुष्पिता	—	चंद्रसूरि	—	—	—	—
22.	पुष्पचूलिका	—	चंद्रसूरि	—	—	—	—
23.	वण्हि दशा	—	चंद्रसूरि	—	—	—	—
24.	चतु:शरण	200	मूल वीरभद्रगणि टीका-गुणरत्नसूरि	80	—	—	—
25.	आतुर प्रत्याख्यान	150	मूल वीरभद्रगणि टीका-गुणरत्नसूरि	100	—	—	—
26.	महाप्रत्याख्यान	176	—	176	—	—	—

मूल	आगम	वृत्ति प्रमाण	वृत्तिकार	मूल प्रमाण	निर्युक्ति	भाष्य	चूर्णि
27.	भक्त परिज्ञा	215	मूल वीरभद्रगणि अवचूरी-अज्ञात	215	—	—	—
28.	तंदुलवैचारिक	500	मूल पूर्वाचार्य टीका-गुणरत्नसूरि	500	—	—	—
29.	संस्तारक	110	मूल पूर्वाचार्य टीका-गुणरत्नसूरि	155	—	—	—
30.	गच्छाचार	1560	—	175	—	—	—
31.	गणिविद्या	105	पूर्वाचार्य	105	—	—	—
32.	देवेन्द्रस्तव	375	ऋषिपालित	375	—	—	—
33.	मरण समाधि	837	—	837	—	—	—
34.	निशीथ	—	चंद्रसूरि	821	—	7500	28000
35.	बृहत्कल्प	42600	मलयगिरि क्षेमकीर्तिसूरि	473	—	7600	16000
36.	व्यवहार	34000	मलयगिरि	373	—	6400	1200
37.	दशाश्रुतस्कंध	—	—	896	180	—	2225
38.	जीत कल्प	—	—	130	—	3125	1000
39.	महानिशीथ	—	हरिभद्रसूरि	4548	—	—	—
40.	आवश्यक	22000	हरिभद्रसूरि, जिनभद्रगणि, कोट्याचार्य, मलयगिरि, तिलकसूरि	130	2500	483	18500
41.	ओघनिर्युक्ति	7500	द्रोणाचार्य	—	1355	332	—
42.	दशवैकालिक	7000	हरिभद्रसूरि	835	500	63	7000
43.	उत्तराध्ययन	16000	शांतिसूरि, हरिभद्रसूरि	2000	700	—	5850
44.	नंदी	7732	मलयगिरि हरिभद्रसूरि	700	—	—	1500
45.	अनुयोगद्वार	5900	मल्लधारी हेमचन्द्रसूरि	2000	—	—	2265

अंग, उपांग, प्रकीर्णक और चूलिका रूप 35 आगमों पर भाष्य उपलब्ध नहीं हैं, 7 आगमों पर ही निर्युक्ति उपलब्ध है ।

संपूर्ण पंचांगी एक मात्र आवश्यक सूत्र पर है ।

निर्युक्तियों के कर्ता **श्री भद्रबाहुस्वामी** हैं ।

भाष्य के कर्ता **संघदास गणि, जिनभद्रगणि** क्षमाश्रमण और **सिद्धसेन** गणि हैं ।

चूर्णिकार के रूप में **जिनदासगणि** महत्तर प्रसिद्ध हैं ।

आगम संख्या

पू. वीरविजयजी म. ने 45 आगम की पूजा में कहा है–

1. आगे आगम बहु हता, अर्थ विहित जगदीश ।
कालवश संप्रति रह्या, आगम पीस्तालीश ।।

पूर्वकाल में आगमों की संख्या बहुत थी, नंदीसूत्र में 84 आगमों के नाम उपलब्ध है । कालक्रम से 39 आगमों का विच्छेद हो गया है, अतः वर्तमान में 45 आगम मिलते है ।

जिस प्रकार ब्राह्मण लोग वेद को, बौद्ध लोग त्रिपिटक को, ईसाई लोग बाइबल को, मुस्लिम लोग कुरान शरीफ को तथा पारसी लोग खुर्दे अवेस्ता को प्रमाणभूत मानते हैं, उसी प्रकार जैनों के लिए ये आगम जिनवाणी स्वरुप है । ये आगम प्रभु की वाणी स्वरुप है, अतः सर्वज्ञ कथित होने से प्रमाणसूत्र है ।

84 आगमों के नाम

1. श्री आचारांग सूत्र	2. श्री सूत्रकृतांग सूत्र
3. श्री स्थानांग सूत्र	4. श्री समवायांग सूत्र
5. श्री भगवती सूत्र	6. श्री ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र
7. श्री उपासकदशांग सूत्र	8. श्री अंतकृत्दशांग सूत्र
9. श्री अनुत्तरोपपातिकदशांग सूत्र	10. श्री प्रश्नव्याकरण सूत्र
11. श्री विपाक अंग सूत्र	12. श्री औपपातिक सूत्र
13. श्री राजप्रश्नीय सूत्र	14. श्री जीवाभिगम सूत्र
15. श्री पन्नवणा सूत्र	16. श्री सूर्यपन्नति
17. श्री जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति	18. श्री चंद्र प्रज्ञप्ति
19. श्री निरयावलिका	20. श्री कप्पवडंसिया सूत्र
21. श्री पुष्पिका	22. श्री पुष्पचूलिका
23. श्री वह्निदशा सूत्र	24. श्री चतुःशरण पयन्ना
25. श्री आतुर प्रत्याख्यान पपन्ना	26. श्री महाप्रत्याख्यान पयन्ना
27. श्री भक्तिपरिज्ञा पयन्ना	28. श्री तंदुल वैचारिक प्रकीर्णक
29. श्री गणिविज्जा पयन्ना	30. श्री गच्छाचार पयन्ना
31. श्री देवेन्द्रस्तव पयन्ना	32. श्री मरणसमाधि पयन्ना

33. श्री संस्तारक पयन्ना	34. श्री दशाश्रुतस्कंध
35. श्री बृहत्कल्प सूत्र	36. श्री व्यवहार सूत्र
37. श्री जितकल्प	38. श्री निशीथ सूत्र
39. श्री महानिशीथ सूत्र	40. श्री आवश्यक सूत्र
41. श्री दशवैकालिक सूत्र	42. श्री उत्तराध्ययन सूत्र
43. श्री पिंडनिर्युक्ति	44. श्री नंदीसूत्र
45. श्री अनुयोगद्वार सूत्र	46. श्री कल्पिताकल्पित
47. श्री चूल्लकल्प सूत्र	48. श्री महाकल्प सूत्र
49. श्री महाप्रज्ञापना	50. श्री चंद्रावेध्यक
51. श्री प्रमादाप्रमाद	52. श्री पोरीसिमंडल
53. श्री मंडल प्रवेश	54. श्री विद्याचरण विनिश्यय
55. श्री ध्यान विभक्ति	56. श्री नाग परियावलिका
57. श्री आत्मविशोधि	58. श्री समुत्थान श्रुत
59. श्री वीतराग श्रुत	60. श्री विहारकल्प
61. श्री चरणविधि	62. श्री ऋषिभाषित सूत्र
63. श्री द्वीपसागर प्रज्ञप्ति	64. श्री क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति
65. श्री महल्लिका विमान प्रविभक्ति	66. श्री अंगचूलिका
67. श्री वर्गचूलिका	68. श्री विवाहचूलिका
69. श्री अरुणोपपात	70. श्री वरुणोपपात
71. श्री गरुडोपपात	72. श्री वैश्रवणोपपात
73. श्री वेलंधरोपपात	74. श्री देवेन्द्रोपपात
75. श्री उत्थानश्रुत	76. श्री बंधदशा
77. श्री द्विगृद्धिदशा	78. श्री दीर्घदशा
79. श्री त्रण स्वप्नभावना	80. श्री चरण स्वप्नभावना
81. श्री तेजोनिःसर्ग	81. श्री आशीविष भावना
82. श्री दृष्टिविष भावना	83. श्री अंग विद्या

आगम सूत्र-अधिकारी

ठीक ही कहा हैं, `शस्त्र और शास्त्र अधिकारी को ही लाभ करते है ।

–अधिकारी (योग्य) के हाथ में रहा शास्त्र स्व-पर

रक्षण का काम करता है और अयोग्य के हाथ में रहा शस्त्र स्व-पर का घात की करता है ।

इसी प्रकार जिनवाणी रुप शास्त्र भी योग्य व पात्र को ही लाभ करता है ।

आगम सूत्र भी अधिकारी को ही लाभ करते हैं, अनधिकारी को नहीं ! पूर्वाचार्य महर्षियों ने विविध आगमों के अधिकारी की व्यवस्था निश्चित की है ।

आगम सूत्र पढने-पढाने का मुख्य अधिकार साधु भगवंतों को है ।

45 आगमों को दो भागों में विभक्त किया हैं–

(1) अंग प्रविष्ट और (2) अंग बाह्य अथवा अनंग प्रविष्ट !

–आचारांग आदि बारह अंग, अंग प्रविष्ट कहलाते है ।

–उसके सिवाय 12 उपांग, 10 पयन्ना, 6 छेदसूत्र, 4 मूल तथा नंदी-अनुयोग अनंग प्रविष्ट कहलाते है ।

–जो सूत्र दिन-रात्रि के पहले व चौथे प्रहर में पढे जाते है, वे कालिक सूत्र कहलाते है ।

–जो सूत्र चार काल की असज्झाय छोडकर शेष काल में पढे जाते हैं, वे उत्कालिक सूत्र कहलाते है ।

–कालिक सूत्र पढने के लिए कालग्रहण व अन्य योग विधि का पालन करना पडता है ।

–उत्कालिक सूत्र पढने में कालग्रहण आदि विधि नहीं होती है ।

आवश्यक, दशवैकालिक, 12 उपांग, 10 पयन्ना, नंदि-अनुयोग आदि उत्कालिक कहलाते है अर्थात् उनके योगोद्वहन में कालग्रहण की विधि नहीं होती है ।

–उत्तराध्ययन सूत्र, आचारांग सूत्र, कल्पसूत्र, महानिशीथ सूत्र, सुयगडांग सूत्र, ठाणांग व भगवती आदि कालिक सूत्र होने से उनके योगोद्वहन में कालग्रहण जरुरी है ।

–निशीथ, महानिशीथ आदि ग्रंथों के अध्ययन के लिए दीक्षा पर्याय और योगोद्वहन के साथ गंभीरता आदि गुण भी जरुरी बतलाए है ।

हर किसी मुनि को छेद-ग्रंथ पढने का अधिकार नहीं दिया जाता है ।

–पूर्वकाल में साध्वीजी भगवंतों को ग्यारह अंग पढने का अधिकार था । साध्वीजी को दृष्टिवाद बारहवां अंग पढने का अधिकार नहीं है ।

वर्तमान में साध्वीजी को सिर्फ एक ही अंग अर्थात् आचारांग सूत्र पढने व योगोद्वहन का अधिकार है ।

साध्वीजी को आवश्यक सूत्र व दशवैकालिक सूत्र तथा उत्तराध्ययन सूत्र (अनंग प्रविष्ट में से) का अधिकार होने से उन्हीं सूत्रों के योगोद्वहन की आज्ञा है ।

श्रावकों को आवश्यक सूत्र एवं श्रावक मुमुक्षु अवस्था में हो तो दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन कंठस्थ करने का अधिकार है ।

आवश्यक सूत्र आदि को छोड अन्य आगम सूत्र पढने का अधिकार श्रावक-श्राविकाओं को नहीं है ।

हाँ ! छह छेद सूत्रों को छोड शेष 39 आगमों की वाचना श्रवण करने का अधिकार श्रावकों को भी है ।

काल के प्रभाव से वर्तमान जैन श्रावक संघ में संस्कृत-प्राकृत भाषा के प्रति खूब उदासीनता देखी जा रही है ।

दिन-प्रतिदिन संस्कृत-प्राकृत भाषा का अभ्यास घटता जा रहा हैं, जो खूब चिंता का विषय है ।

जो श्रुतज्ञान स्वयं भगवत् स्वरुप हैं, उसके प्रति हमारे हृदय में खूब आदरभाव होना चाहिए ।

प्रस्तुत पुस्तक में वर्तमान में विद्यमान आगमों का परिचय दिया है । इसे पढने से भी उन आगमों की महत्ता का सहज ख्याल आ जाता है ।

प्रस्तुत विवेचन का मु.श्री स्थूलभद्रविजयजी म.सा. ने खूब सुंदर संपादन किया है, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है ।

जाने-अनजाने में कहीं भी जिनाज्ञा विरुद्ध कुछ भी आलेखन हुआ हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम् ।

आसो पूर्णिमा,
दि.28-10-2023
महावीर भवन
निगडी (पूना)

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद
पंन्यासप्रवर श्री
भद्रंकरविजयजी गणिवर्य
कृपाकांक्षी
रत्नसेनसूरि

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	:	राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	:	चंपाबाई
पिता का नाम	:	छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	:	बाली (राज.)
जन्म तिथि	:	भादो सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-1958
बचपन में धार्मिक अभ्यास	:	पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	:	18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	:	1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षा दाता	:	पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	:	अध्यात्मयोगी **पू. पंन्यास** **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन	:	माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	:	शासन प्रभावक पू.आ. **श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षा दिन विशेषता	:	भारत भर में लगभग 50 ऊपर दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	:	9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	:	न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	:	18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	:	फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	:	घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	:	संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

◆ **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषा बोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम प्रवचन प्रारंभ :** फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर, पालीताणा (दो बार) नासिक, बेंगलोर, मैसूर, कोयम्बत्तूर, चैन्नइ, बीजापूर, भायंदर, निगडी ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक तामिलनाडू आदि ।

◆ **पादविहार :** लगभग 45,000 कि.मी. ।

◆ **(छ'री पालित संघ में मार्गदर्शन-प्रवचन) :** बरलूट से शत्रुंजय, गोदन से जैसलमेर, वल्लभीपुर से पालीताणा, लुणावा से राणकपुर पंचतीर्थी

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय होकर गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ, सेवाडी से राणकपूर पंचतीर्थी, कोयम्बत्तूर से अव्वलपुंदरी ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन :** **''वात्सल्य के महासागर''** वि.सं.संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** 238

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मु. श्री उदयरत्नविजयजी म.,**
स्व. मुनि श्री केवलरत्नविजयजी म., स्व. मुनि श्री कीर्तिरत्नविजयजी म.,
मुनि श्री प्रशांतरत्नविजयजी म., मुनि श्री शालिभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म., स्व. मुनि श्री यशोभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री विमलपुण्यविजयजी म., मुनि श्री निर्वाणभद्रविजयजी म.

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, कीर्तिस्तंभ (घाणेराव), नासिक, सुशीलधाम (बेंगलोर), मैसूर, महावीर धाम (मुंबई)

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना.

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई.

◆ **आचार्य पदवी :** पोष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा ।

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ.सं.
	11 अंग सूत्र	
1.	आचारांग सूत्र	1
2.	श्री सूत्रकृतांग सूत्र	13
3.	श्री स्थानांग सूत्र	24
4.	श्री समवायांग सूत्र	34
5.	श्री भगवती सूत्र	43
6.	श्री ज्ञाता-धर्मकथा सूत्र	54
7.	उपासक दशांग सूत्र	60
8.	अंतकृद् दशांग सूत्र	64
9.	अनुत्तरोपपातिक दशांग सूत्र	66
10.	प्रश्न व्याकरण सूत्र	68
11.	विपाक-सूत्र	73
	12 उपांग सूत्र	
12.	श्री औपपातिक सूत्र	81
13.	राजप्रश्नीय सूत्र	83
14.	जीवाजीवाभिगम सूत्र	85
15.	श्री प्रज्ञापना सूत्र	87
16-	सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र-	
17.	चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र	89
18.	जंबू द्वीप प्रज्ञप्ति	91
19-	निरयावलिका-कल्पवतंसिका-	
23	पुष्पिका-पुष्पचूलिका-वह्निदशा सूत्र	93
	10 पयन्ना	
24.	चतुःशरण प्रकीर्णक सूत्र	97
25.	आतुर प्रत्याख्यान प्रकीर्णक सूत्र	98
26.	महा प्रत्याख्यान प्रकीर्णक सूत्र	100
27.	भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक सूत्र	101
28.	तंदुल वैचारिक प्रकीर्णक सूत्र	103
29.	संस्तारक प्रकीर्णक सूत्र	105
30.	गणि-विद्या प्रकीर्णक सूत्र	106
31.	श्री गच्छाचार प्रकीर्णक सूत्र	109
32.	देवेन्द्रस्तव प्रकीर्णक सूत्र	111
33.	मरण समाधि प्रकीर्णक सूत्र	112
	छ छेद सूत्र	
34.	निशीथ सूत्र	115
35.	दशाश्रुतस्कंध सूत्र	118
36.	बृहत् कल्प सूत्र	124
37.	व्यवहार सूत्र	127
38.	महानिशीथ सूत्र	129
39.	जीतकल्प सूत्र	132
	चार मूल सूत्र	
40.	आवश्यक सूत्र	134
41.	दशवैकालिक सूत्र	136
42.	उत्तराध्ययन सूत्र	148
43.	ओघ निर्युक्ति-पिंड निर्युक्ति	161
44.	दो मूल सूत्र	163
45.	अनुयोग द्वार	165

1

आचारांग सूत्र

द्वादशांगी में पहला अंग-श्री आचारांग सूत्र । प्राकृत भाषा में इसे **'आयारो'** नाम से जाना जाता है । यह सूत्र पूर्व काल में 18000 पद प्रमाण था । अनुयोग द्वार की टीका के अनुसार एक पद में 51,08,86,040 श्लोक एवं 26 अक्षर होते थें । वर्तमान में यह सूत्र **2554** श्लोक प्रमाण विद्यमान है ।

इस सूत्र पर श्रुतकेवली श्री भद्रबाहुस्वामीजी रचित 352 श्लोक प्रमाण निर्युक्ति उपलब्ध है ।

पूज्य आचार्य श्री जिनदासगणि रचित 8300 श्लोक प्रमाण चूर्णि है ।

पूज्य आचार्य श्री शीलांकाचार्यजी द्वारा रचित 12000 श्लोक प्रमाण बृहत्वृत्ति एवं खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनहंससूरीश्वरजी द्वारा रचित 9500 श्लोक प्रमाण प्रदीपिका टीका उपलब्ध है । कुल मिलाकर 40,529 श्लोक प्रमाण साहित्य वर्तमान में उपलब्ध है ।

नाम के अनुसार इस आगम ग्रंथ में ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार रुप पांच आचारों का वर्णन है । केवलज्ञान प्राप्त करके तीर्थंकर परमात्मा सबसे पहले आचार धर्म का उपदेश देते है । इन उपदेशों को ग्रहण कर गणधर भगवंत सबसे पहले आचारांग सुत्र की रचना करते है ।

आचारांग की निर्युक्ति में कहा है–**'अंगाणं कि सारो ? आयारो !'** अर्थात् **द्वादशांग का सार क्या है ? आचार !** आचारनाम का प्रथम अंग । आचारों का बताने वाला यह आचारांग सूत्र समस्त द्वादशांगी का सार है ।

पूर्व काल में दीक्षा के पश्चात् इस आगम के प्रथम अध्ययन शस्त्रपरिज्ञा के अभ्यास के बाद ही महाव्रतों के स्वीकार रुप बडी दीक्षा होती थी । चार अनुयोग की अपेक्षा यह आगम चरण- करणानुयोग को बतानेवाला सबसे महत्त्वपूर्ण आगम है । इससे सभी आगमों में इसका स्थान सबसे प्रथम रखा गया है । धर्म की आधारशिला आचार का पालन ही है । साधु का

पंचाचारमय जीवन ही मौन उपदेश है । आचार पालन के अभाव में धर्म की सच्ची प्रभावना नहीं हो सकती है ।

मुख्य रुप से साधु जीवन के आचारों का वर्णन करते इस आगम सूत्र के दो श्रुतस्कंध है । पहला श्रुतस्कंध **आचार** नाम का है । जिसका दूसरा नाम **'ब्रह्मचर्य'** भी है । आत्मा में रमणता कराने वाले इस प्रथम श्रुतस्कंध में नौ अध्ययन है जो 44 उद्देशों में विभक्त है ।

दूसरा श्रुतस्कंध **'आचाराग्र'** नाम का है । जिसका दूसरा नाम **'आचार-चूला'** है । इस श्रुतस्कंध में चार चूलिकाए है जो सोलह आध्ययनो में विभक्त है । इस श्रुतस्कंध में एक भी उद्देशा नहीं है ।

पहले आचार नाम के श्रुतस्कंध में निश्चय के लक्ष्यपूर्वक साधु जीवन का उत्सर्ग मार्ग बताया है । उसमें बताये नौ अध्ययनों का परिचय इस प्रकार है ।

1. शस्त्र परिज्ञा :– छह काय के जीवों की रक्षा में साधु जीवन का रक्षण है । इन छ काय के जीवों का वध किन किन शस्त्रों से होता है ? उसका बोध इस प्रथम अध्ययन में दिया है । सबसे पहले आत्मा की सिद्धि बताकर पृथ्वीकाय आदि स्थावर जीवों में जीवत्व की सिद्धि के सचोट तर्क दिये है । स्वकाय शस्त्र और परकाय शस्त्र से होने वाली जीवों की विराधना, उसके कटु परिणाम एवं हिंसक प्रवृत्ति के त्याग का उपदेश 177 सूत्रों द्वारा दिया गया है ।

2) लोक विजय – आत्मा से अतिरिक्त माता-पिता-पत्नी-पुत्र-स्नेहीजन आदि लोक है । उनके प्रति आसक्ति हमारे संसार का मुख्य कारण है । दीक्षा लेते समय स्वजनों का त्याग किया, अब उनके प्रति आसक्ति का त्याग भी जरुरी है । ग्रंथकार ने स्वजन की आसक्ति त्याग का उपदेश देकर क्रोधादि कषायों को जीतने का उपाय बताया है । क्षमा से क्रोध को, नम्रता से अभिमान को, सरलता से माया को और संतोष से लोभ कषाय को जीतने के लिए विशेष जागृत रहना जरुरी है । 186 सूत्रों द्वारा इस अध्ययन में संयमियों को आत्म-जागृति का संदेश दिया है ।

3) शीतोष्णीय :– अनुकूल परिषह-शीत परिषह है और प्रतिकूल परिषह-उष्ण परिषह है । 22 परिषहों में स्त्री परिषह और सत्कार परिषह को शीत परिषह कहा है, तथा शेष परिषहों को उष्ण परिषह कहा है । साधु को इन सभी परिषह को समता भाव से सहन करने चाहिए । शीत

परिषह में रति और उष्ण परिषह में अरति का त्याग करने का उपदेश इस अध्ययन में 87 सूत्रों द्वारा बनाया है ।

4) सम्यक्त्व :– तत्त्वार्थ की श्रद्धा सम्यक्त्व है । सम्यक्त्व ही आत्म साधना का मूलाधार है । शंका-आकांक्षा-विचिकित्सा आदि अतिचारों से शुद्ध सम्यक्त्व से ही साधु कषायों पर विजय प्राप्त कर सकता है । 53 सूत्र वाले इस अध्ययन में साधु का लोक प्रवाह का त्याग करने का उपदेश दिया है ।

5) लोक सार :– इस लोक में धर्म ही एक मात्र सार है । धर्म ही ज्ञान, संयम और पंरपरा से मोक्ष का कारण है । धर्म को सारभूत माननेवाला मुनि, संसार से निर्वेद भाव को प्राप्त कर, हिंसादि पाप व्यापारों का त्याग करता है और सदा मोक्ष के लिए प्रयत्नशील रहता है । 140 सूत्र वाले इस अध्ययन में वैराग्य भाव पोषक सुन्दर उपदेश है । महोपाध्याय श्री यशोविजयजी म.सा. ने 125 गाथा के स्तवन में इस अध्ययन की साक्षी दी है ।

6) धूत :– धूत अर्थात् धूनन करना, धोना, त्याग करना । इसके द्रव्य और भाव से दो भेद है । पदार्थ पर लगे मैल को दूर करना द्रव्य धूत है और आत्मा पर लगे कर्मों का क्षय करना भाव धूत है । स्वजन-परिजन के प्रति ममत्व का त्याग कर, आत्म साधना में लीन बनने उपकरण और शरीर के प्रति रहे ममत्व के त्याग का 113 सूत्रों द्वारा सुन्दर उपदेश इस अध्ययन में दिया है ।

7) महापरिज्ञा :– साधु जीवन के मुलगुण और उत्तर गुणों को जानकर उसके यथार्थ पालन का उपदेश इस अध्ययन में है । **''इस अध्ययन के सात उद्देशो में अनेक विद्या-मंत्र आदि होने से पूर्वाचार्यो ने इसे लुप्त किया है ।''** ऐसा कहा जाता है ।

8) विमोक्ष :– समस्त कर्मों से मुक्त होना 'विमोक्ष' है । श्रावको के आंशिक कर्म क्षय को देश विमोक्ष और साधुओं के सर्व कर्म क्षय को सर्व विमोक्ष कहा है । 130 सूत्र और 25 श्लोक प्रमाण इस अध्ययन में साधु के कल्प्य-अकल्प्य, सांभोगिक-असांभोगिक व्यवहार का वर्णन करके अन्त में भक्त परिज्ञा, इंगिनी मरण और पादपोपगमन अनशन की विधि बताई है ।

9) उपधान श्रुत :– उपधान का अर्थ है-सहारा । 70 श्लोक प्रमाण इस अध्ययन में भगवान महावीर स्वामी की विहारचर्या, विहार

स्थान एवं सहन किये मरणांत परिषहों का हृदयद्रावक वर्णन किया है । भगवान महावीर के द्वारा सहन किये गए समस्त उपसर्ग और परिषहों में रही उनकी समता और सहनशीलता हमें आत्म साधना में प्रमाद का त्याग करने की प्रेरणा देती है ।

❀ आचाराग्र नाम के दूसरे श्रुतस्कंध में चार चूलिका और 16 अध्ययन है । उनके नाम इस प्रकार है-प्रथम चूलिका–

1) पिंडैषणा अध्ययन 2) शय्या एषणा अध्ययन 3) ईर्या एषणा अध्ययन 4) भाषाजात अध्ययन 5) वस्त्र एषणा अध्ययन 6) पात्र एषणा अध्ययन 7) अवग्रह-प्रतिमा अध्ययन ।

दूसरी चूलिका का सप्तक है, जिसमें 1) स्थान 2) स्वाध्याय स्थल, 3) स्थंडिल भूमि 4) शब्द 5) रुप 6) परक्रिया 7) अन्योन्य क्रिया के विषय में वर्णन है ।

तीसरी चूलिका में भावना अध्ययन है ।

चौथी चूलिका में विमुक्ति अध्ययन बताया है । पांचवी चूलिका स्वतंत्र आगम निशीथ सूत्र के रुप में है । प्रथम श्रुतस्कंध में निर्देश नहीं किये गए अनेक मार्मिक विषयों का निर्देश दूसरे श्रुतस्कंध में किया है ।

500 धर्मग्रंथ के प्रणेता वाचकवर्य श्री उमास्वातिजी महाराज ने प्रशमरति ग्रंथ के श्लोक 112 से 119 तक श्री आचारांग सूत्र का निर्देश कर बताया है कि **'जो इस आचारांग सूत्र के अभ्यास पूर्वक आचरण करता है, उसका कभी पराभव नहीं होता है ।'**

जीवन परिवर्तन :– भूतकाल में राजसभा में धर्म के विषय में वाद-विवाद होते थें । तब जैनों को हराने के उद्देश्य से **गोविंद** नाम के बौद्ध अनुयायी ने जैन दीक्षा का स्वीकार किया । उसका लक्ष्य मात्र जैन धर्म के छिद्रों को जानना था । शास्त्राध्ययन करते करते आचारांग सूत्र में जब उन्होंने निगोद और एकेन्द्रिय आदि जीवों का स्वरुप जाना तब परमात्मा के केवलज्ञान का सच्चा परिचय हुआ । जीवों की इतनी सूक्ष्मता से वर्णन करना, केवलज्ञान के बिना शक्य नहीं है । अपना मत मिथ्या है और परमात्मा का मत ही सच्चा है, इस निष्कर्ष को पाकर, पश्चात्ताप से उन्होंने पुनः दीक्षा स्वीकार की एवं रत्नत्रयी की आराधना में लीन बनकर आत्म कल्याण किया ।

आचारांग सूत्र के बोधदायक हितोपदेश

1) 'जाए सद्धाए णिक्खंतो, तमेव अणुपालिया ।'

भावार्थ :– व्रतों के स्वीकार और पालन करने की वृत्ति में चतुर्भंगी देखी जाती है ।

1) सिंह की तरह व्रतों का स्वीकार और सिंह की तरह निडरता पूर्वक उसका पालन करना ।

2) सिंह की तरह व्रतों का स्वीकार परंतु सियाल की तरह उसके पालन मे कायर बनना ।

3) सियाल की तरह व्रतों का स्वीकार परंतु सिंह की तरह निडरता से उसका पालन करना ।

4) सियाल की तरह व्रतों का स्वीकार और सियाल की तरह उसके पालन में कायर बनना ।

इन चारों में सबसे श्रेष्ठ प्रथम विकल्प है । उसी के लिए यहाँ पर प्रेरणा देते हुए कहा है कि ***जिस श्रद्धा से व्रतों का स्वीकार किया है, उसी श्रद्धा से उसका पालन करना चाहिए । धर्म के पालन में कभी कायर नहीं बनना चाहिए ।***

2) 'अरइं आउट्टे से मेहावी, खणंसि मुक्के ।'

भावार्थ :– संसार और मोक्ष तथा रति और अरति-दोनों परस्पर विरोधी है । जिसे संसार के प्रति रति है, उसे मोक्ष और मोक्ष के उपाय रुप संयम के प्रति अरति होगी और जिसे मोक्ष और मोक्ष के उपाय रुप संयम के प्रति रति होगी उसे संसार के प्रति अरति होगी । इस सूत्र में संयम के प्रति अरति त्याग का उपदेश दिया है । संयम के प्रति अरति, मुक्ति में बाधक है । इसलिए संयम के प्रति रही अरति का त्याग करों, जिससे शीघ्र मुक्ति प्राप्त हो सके ।

3) 'राग समुप्पाया समुप्पज्जंति'

भावार्थ :– संसार में रहे पुद्गलों की आसक्ति-लगाव के कारण आत्मा कर्म बंध करती है । कर्म के कारण आत्मा दुर्गति में जाती है एवं दुर्गति के कारण ही आत्मा रोग आदि दुःखों का अनुभव करती है । अतः

रोग आदि दुःखों का मूल कारण आसक्ति ही है । पुदगलों के प्रति आसक्ति को तोड़ने के लिए सदा प्रयत्न-शील रहना चाहिए ।

4) 'जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।'

भावार्थ :– जगत् में रहे सभी पदार्थ अनंत धर्मात्मक है । प्रत्येक पदार्थ में सकारात्मक धर्म तो एक ही हो सकता है । परंतु नकारात्मक धर्म तो अनंत हो सकते है । जैसे किसी वस्तु का वर्ण सफेद है, तो सफेद से अतिरिक्त सारे वर्ण नकारात्मक रुप से उसमें मिले हुए है । किसी भी पदार्थ को पूरी तरह जानने के लिए उसके सकारात्मक और नकारात्मक (Positive and Negative) धर्मों को जानना जरुरी है । इसलिए इस पद में कहा है **'जो एक पदार्थ को पूर्ण रुप से जानता है वह समस्त पदार्थों को जानता है और जो समस्त पदार्थों को जानता है वही एक पदार्थ को पूर्ण रुप से जानता है ।'** परमात्मा के द्वारा बताए स्याद्वाद मत की यही विशेषता है ।

5) 'तुममेव तुमं मित्ते किं बहियां मित्तमिच्छसि ? ।'

भावार्थ :– अपने सुख-दुःख की संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए हर व्यक्ति अपना मित्र बनाता है । परंतु कौन जानता है कि जिसे हम अपना मित्र बनाते है, वह हमसे वफादार रहेगा ही ? अतः बाह्य भाव की अपेक्षा का त्याग कर अन्तरात्म भाव में लीन बनने के लिए सुन्दर प्रेरणा देते हुए कहा है-**'हे आत्मन् ! तू स्वयं ही तेरा मित्र है, बाहर के मित्र की इच्छा तू क्यों करता है ?'**

6) 'अट्टे लोए' ।

भावार्थ :– विश्व के सारे प्राणी आर्त्त ध्यान में डुबे हुए है । निर्धन को धन पाने की चिंता है और धनवान को धन के रक्षण की चिंता है । सभी जीव किसी-न-किसी चिंता में व्यग्र है । अति विरल आत्माएँ ही ऐसी है, जो धर्म ध्यान में अपना समय व्यतीत करती है । अतः चिंता छोडकर धर्म ध्यान से आत्मचिंतन करना चाहिए ।

7) हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ क्रिया ।

भावार्थ :– मोक्ष मार्ग में आगे बढने के लिए ज्ञान और क्रिया-दोनों जरुरी है । उदाहरण से समझाते है कि–एक अंधा और एक लंगडा व्यक्ति, जगल में फंसें है । अचानक जंगल में आग लग जाती है । दोनों

आग से बचना चाहते है, परंतु लंगडा व्यक्ति आग को निकट आते देखने पर भी कहीं जा नहीं सकता और अंधा व्यक्ति चारों ओर दौड़ रहा है, परंतु उसे आग और जंगल को पार करने का रास्ता नहीं दिखता । ऐसी परिस्थिति में यदि दोनों का मिलन हो जाय तो दोनों सही सलामत जंगल पार कर सकते है । वैसे ही मोक्ष मार्ग में ज्ञान को आंख की और क्रिया को पैर की उपमा दी है ।

ज्ञान से निरपेक्ष मात्र क्रिया का आचरण-अंधे व्यक्ति की दौड़ के समान है और क्रिया से निरपेक्ष मात्र ज्ञान धारण करना लंगडे व्यक्ति के देखने समान है । आध्यात्मिक जीवन में ज्ञान और क्रिया, दोनों का यथार्थ समन्वय हो तो ही मोक्ष मार्ग में प्रगति शक्य है अन्यथा मात्र भव भ्रमण के दुःखों को ही यह आत्मा सहन करती रहती है ।

8) 'खणं जाणाहि पंडिए ।'

भावार्थ :– हर कोई विकास के मार्ग में प्रगति करना चाहता है । परंतु जीवन में प्रगति के अवसर बार-बार नहीं आते है । अंग्रेजी में किसी चिंतक ने कहा है– 'Oppurtunity knock once the door' अर्थात् 'कामयाबी पाने का अवसर एक ही बार आता है ।' अतः ऐसे शुभ अवसरों को प्राप्त कर उसे सफल बनाना श्रेष्ठ उपाय है । आध्यात्मिक मार्ग में अप्रमत्त बनने के लिए प्रभु यही बात कहते है कि बुद्धिशाली वहीं है जो आये हुए अवसर को जानता है एवं योग्य पुरुषार्थ से उसे सफल बनाता है ।

9) 'कामा दुरतिकामा'

भावार्थ :– आत्मा के छह अंतरंग शत्रु में सबसे पहला शत्रु 'काम' है । काम अर्थात् पाँच इन्द्रिय के विषय सुखों को पाने की अभिलाषा । भूतकाल के अनंत भवों में हमारी आत्मा ने सुन्दर और मनोज्ञ शब्द, रुप, रस, गंध और स्पर्श का अनंतीबार भोग किया है । चौदह राजलोक के समस्त पुद्गलों का हमने अनंती बार भोग किया है, फिर भी जब कोई पदार्थ हमें प्रिय लगने लगता है, तब यही लगता है कि इस पदार्थ का भोग पहली बार ही कर रहे है । वास्तव में अनंत काल की अपेक्षा कोई घटना नई नहीं है । मोह के बंधनों से बंधी हमारी आत्मा कदापि तृप्त नहीं बनती है । इसी बात को वीर प्रभु कहते है कि काम-भोग पर विजय पाना अति कठिन है । अतः इसे जीतने प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है ।

10) लाभुत्ति न मज्जिज्जा, अलाभुत्ति व सोइज्जा

भावार्थ :– लाभ की दशा में गर्व न करे और लाभ के अभाव में शोक न करे ।

व्यापार आदि में जो कुछ लाभ होता हैं, उसका मुख्य कारण लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम ही है । लाभांतराय कर्म का उदय हो तो लाख कोशिश करने पर भी कुछ भी लाभ नहीं होता है ।

साधु जीवन में भी लांभतराय कर्म का क्षयोपशम हो तो सानुकूल भिक्षा की प्राप्ति हो जाती है, लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम न हो तो बहुत श्रम करने पर भी लाभ नहीं हो पाता है ।

यदि पुण्योदय से, लाभांतराय कर्म के क्षयोपशम से इच्छित लाभ प्राप्त हो जाय तो भी उसका अभिमान तो बिल्कुल नहीं करना चाहिये, क्योंकि अभिमान करने से वह क्षयोपशम भी नष्ट हो जाता है ।

इसके साथ ही लाभांतराय कर्म के उदय से व्यापार में लाभ प्राप्त न हो तो भी उसका हृदय में शोक नहीं होना चाहिये । शोक, आर्तध्यान और दुर्ध्यान करने से पाप कर्म का ही बंध होता है ।

ढंढण अणगार हमेशा गोचरी के लिए जाते थे, परंतु लाभांतराय कर्म के उदय के कारण उन्हें अपनी आत्म-लब्धि से कहीं भी गोचरी नहीं मिल पाती थी, परंतु ऐसी स्थिति में भी उनकी प्रसन्नता यथावत् थी, उनके मुख पर किसी भी प्रकार की दीनता नहीं थी । अलाभ की स्थिति को भी वे उसी प्रसन्नता के साथ सहन कर रहे थे ।

आत्मा में रही दीनता के अभाव के कारण ही उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो पाई थी । अलाभ की स्थिति में यदि उन्होंने दीनता की होती तो केवलज्ञान उनसे कोसो दूर ही रहता !

लाभ में हर्ष और अलाभ में शोक दोनों कर्म बंध का कारण है ।

11) उट्ठिए णो पमायए

भावार्थ :– उठो, जागो, प्रमाद मत करो ।

अपने आत्म धन को खा जानेवाला प्रमाद यह आत्मा का सबसे भयंकर शत्रु है ।

प्रमाद यह हमारे जीवन के अमूल्य समय को खा जाता है ।

प्रभु वीर का यह संदेश हैं 'उठो, जागो, यह सोने का समय नहीं हैं, प्रमाद की निद्रा का त्याग कर आत्म उत्थान के लिए प्रयत्नशील बनो । अनंतकाल का अपना भूतकाल प्रमाद में ही व्यतीत हुआ है ।

साधारण वनस्पतिकाय में अपना अनंतकाल व्यतीत हुआ है । उसके बाद पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय में भी खूब लंबा समय व्यतीत हुआ है ।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय (विकलेन्द्रिय) स्थिति में भी अपना दीर्घकाल व्यतीत हुआ है ।

पंचेन्द्रिय अवस्था पाने पर भी मन सबको कहां मिला हैं ?

पंचेन्द्रिय तो नरक व तिर्यंच के जीव भी हैं, परंतु उनके लिए धर्म आराधना दुर्लभ ही है । यद्यपि देवलोक में रहे देवता पंचेन्द्रिय हैं, मन वाले हैं, परंतु वहां भौतिक सुख की सामग्री अपरंपार हैं, उन सुखों में मुग्ध बने देवताओं के लिए भी धर्म की आराधना अशक्य है । देवलोक में देवताओं को रहा अतिसुख साधना मार्ग में बाधक है । नरक गति के जीवों को रहा अति दुःख भी उन्हें साधना मार्ग में आगे बढने नहीं देता है ।

तिर्यंचगति में उन पशुओं को रही अति भूख की पीड़ा और पराधीनता धर्म आराधना में बाधक है ।

मानव भव में देव-भव जितना भौतिक सुख नहीं है ।

मानव भव में नरक की भांति भयंकर दुःख नहीं है ।

मानव भव में तिर्यंच की तरह भूख एवं ना समझी भी नहीं है ।

अतः मनुष्य भव में धर्म आराधना आसानी से हो सकती है ।

धर्म आराधना के लिए सब तरह की अनुकूलता होने पर भी यह प्रमाद हमारे अमूल्य समय को खा जाता है । अतः इस प्रमाद का त्यागकर आत्म साधना के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना चाहिये ।

12) जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुणा हिं वास कोडीहिं ।
तं नाणी तिहीं गुत्तो, खवेइ उस्सासमित्तेणं ।।

भावार्थ :– अज्ञानी करोडो वर्षों में जितने कर्मों का क्षय करता हैं, तीन गुप्ति से युक्त ज्ञानी उतने कर्म श्वास मात्र में खपा देता है ।

अज्ञानता यहीं सबसे बडा अपराध है । अज्ञानता के कारण ही मुख्यतया आत्मा संसार में भटकती है ।

अज्ञानी व्यक्ति की धर्म क्रियाएँ विवेक शुन्य होती है । विवेक शुन्यता के कारण धर्म की क्रियाएँ करते हुए भी उन धर्म-क्रियाओं से जो लाभ होना चाहिये, वह लाभ नहीं हो पाता है ।

ज्ञानी व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक अनुष्ठान विवेक युक्त होता हैं, उस विवेक के कारण ज्ञानी की प्रत्येक क्रिया अनंत कर्म-निर्जरा का कारण बनती है ।

अज्ञानी की धर्म क्रियाएँ भी पाप-बंध का कारण बनती हैं, जब कि ज्ञानी की बाह्य दृष्टि से पाप क्रिया भी कर्म निर्जरा का कारण बन जाती है ।

ज्ञानी के लिए आश्रव के द्वार भी कर्म निर्जरा के द्वार बन जाते है और अज्ञानी के लिए कर्म निर्जरा के साधन भी कर्म बंध के कारण बन जाते है ।

ठीक ही कहा हैं- **'जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा ।'**

ज्ञानी की सम्यग् क्रिया सकाम निर्जरा का कारण बनती हैं, जब कि अज्ञानी की क्रिया अकाम निर्जरा का कारण बनती है ।

ज्ञानी के मासक्षमण में सकाम निर्जरा है ।

जबकि, अज्ञानी के मासक्षमण में भी अकाम निर्जरा है ।

क्रिया यदि पांव के स्थान पर हैं तो ज्ञान आंख के स्थान पर है । जीवन में क्रिया हो, परंतु सम्यग्ज्ञान न हो तो वे क्रियाएँ आत्म-हितकर नहीं बन पाती है । इसीलिए ज्ञानी की अल्प आराधना-साधना भी महाफलदायी बनती हैं, जब कि अज्ञानी की करोडों भवों की साधना भी बहुत अल्प निर्जरा का कारण बनती है । अतः ज्ञानी बने, विवेकी बने ।

13) धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ।।

भावार्थ :– जरा और मरण के तेज प्रवाह में बहते हुए जीव के लिए धर्म ही द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है ।

यह संसार अनादि काल से है और अनंतकाल तक रहनेवाला है । इस संसार में आत्मा का अस्तित्व भी अनादि काल से है । इस अनंत संसार में आत्मा ने अनंत भव किए हैं । हर जन्म में आत्मा ने जन्म, जरा और मृत्यु की पीडा सहन की है । उस पीडा से सर्वथा मुक्ति पाने के लिए एक मात्र धर्म ही श्रेष्ठ उपाय है ।

विशाल समुद्र में चारों ओर पानी ही पानी होता है । उस सागर में महा भयंकर जलचर प्राणी भी होते हैं । परंतु जिस व्यक्ति ने द्वीप का आश्रय लिया होता है, उसे समुद्र के जल अथवा जलचर प्राणियों का किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता है । बस, इसी प्रकार महासागर समान इस भीषण संसार में जिस आत्मा ने जिनेश्वर परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट धर्म की शरण स्वीकार कर ली हो, उसे किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता हैं अर्थात् धर्म की शरण स्वीकार करने वाली आत्मा इस संसार में सर्वथा निर्भय रहती है ।

नरक-तिर्यंच आदि दुर्गति का भय उसी आत्मा को सताता हैं, जिस आत्मा ने धर्म की शरण स्वीकार नहीं की हो । यह धर्म तो दुर्गति में गिरती हुई आत्मा को धारण करता हैं और उसे सद्‌गति में स्थापित करता है ।

इस संसार में मानव जीवन के साथ वृद्धावस्था और मृत्यु की पीडा सहन करनी पडती हैं, जबकि जिनेश्वर परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट धर्म की साधना हमें उस भूमिका तक पहुँचाती हैं, जहाँ जन्म की लेश भी पीडा नहीं...जहां वृद्धावस्था की वेदना नहीं और जहां मृत्यु का लेश भी भय नहीं ! उस अवस्था को प्राप्त आत्मा अजरामर कहलाती है ।

उस अजरामर अवस्था को पाने के लिए ही वीतराग प्ररुपित धर्म, परम आधार हैं । आज तक अनंत आत्माओं ने वीतराग-प्ररूपित धर्म की आराधना कर अजरामर मोक्ष पद प्राप्त किया है ।

संसार में होनेवाली जन्म-जरा और मृत्यु की पीडा से आप भयभीत बने हो, उस भय से मुक्त बनने की इच्छा रखते हो तो शीघ्र ही जिनेश्वर परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट धर्म की शरण स्वीकार करो ।

14) अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ !

भावार्थ :– आत्मा के साथ ही युद्ध करो, बाह्य शत्रुओं से युद्ध करने का क्या फायदा ?

किसी ने हमें शारीरिक-मानसिक या आर्थिक दृष्टि से नुकसान पहुँचा दिया हो तो तत्क्षण हमारे दिमाग में उस व्यक्ति के प्रति एक धारणा हो जाएगी-`ओहो ! वह मेरा दुश्मन है ।'

भगवान महावीर प्रभु हमें सावधान कर रहे हैं, `उस व्यक्ति को दुश्मन मानने के पहले जरा ठहरो, जरा सोचो ! यदि तुम गहराई से सोचोगे तो तुम्हें ख्याल आएगा कि वह व्यक्ति तुम्हारा दुश्मन नहीं है, दुश्मन तो तुम्हारा कर्म ही है । तुमने गत भव में हंसते-हंसते पाप कर्म बांधे है, वे पापकर्म ही तुझे सजा दे रहे है, अतः बाह्य दृष्टि से तूं जिसे दुश्मन मान रहा है, वह तो तेरे दुःख में निमित्त मात्र है, सचमायने में तो तेरा कर्म ही तेरा दुश्मन है...और गहराई से सोचोगे तो मालूम पडेगा, वह कर्म भी तुम्हारा दुश्मन नहीं है, कर्म तो जड़ हैं...वास्तव में तुम्हारे भीतर जो **'अशुभ भाव'** उत्पन्न हुआ, वही तुम्हारा दुश्मन है ।

यदि तुम अपने दुश्मन से लडना चाहते हो तो उस 'अशुभ भाव' रुप दुश्मन से लडो, जिसने तुम्हारे जीवन में आग लगाई है ।

काले रंग के चश्मे पहिनने पर जैसे सर्वत्र काला ही काला दिखायी देता है । बस, इसी प्रकार मोह के चश्मे पहिनने के कारण हमें दुश्मन ही नजर आ रहे हैं ।

महावीर प्रभु हमें जागृत करते है, तुम दूसरों से नहीं, अपने आप से लडो ! तुम्हारा अशुभ भाव ही तुम्हारा दुश्मन है । पूरी ताकत लगा दो, उस अशुभ भाव को परास्त करने के लिए ।

वह अशुभ भाव जिंदा रहा तो वह तुम्हें जन्मोजन्म तक हैरान करता रहेगा । खूब लडो, परंतु वास्तव में जो अपना दुश्मन है, उससे लडो । उस लडाई में तुम विजेता बन गए तो तुम विश्वसम्राट् बन जाओगे और उससे हार गए तो तुम विश्व के गुलाम बन जाओगे ।

2

श्री सूत्रकृतांग सूत्र

द्वादशांगी में दूसरा अंग-श्री सूत्रकृतांग सूत्र । इसे प्राकृत भाषा में `सूयगडं नाम से जाना जाता है । पूर्व काल में यह सूत्र 36000 पद प्रमाण था, वर्तमान में यह आगम मूल सूत्र में मात्र 2100 श्लोक प्रमाण विद्यमान है । इस आगम में 82 गद्यात्मक सूत्र और 732 श्लोक है ।

इस सूत्र पर चौदह पूर्वधर श्री भद्रबाहु स्वामीजी द्वारा रचित 205 श्लोक प्रमाण **निर्युक्ति** है, पूज्य आचार्य श्री शीलांकाचार्यजी महाराज द्वारा रचित 12850 श्लोक प्रमाण बृहद्वृत्ति (टीका) है, तथा अज्ञात पूर्वाचार्य के द्वारा रचित 9900 श्लोक प्रमाण चूर्णि है । इसके अतिरिक्त पूज्य आचार्य श्री भुवनसूरिजी के शिष्य उपाध्याय श्री साधुरंग महाराज द्वारा रचित सम्यक्त्व दीपिका नाम की 10,000 श्लोक प्रमाण टीका है एवं पूज्य आचार्य श्री हेमविमलसूरिजी के शिष्य पूज्य हर्षकुल गणि द्वारा रचित दीपिका नाम की 6600 श्लोक प्रमाण टीका है । कुल मिलाकर इस आगम संबंधी 41,750 श्लोक प्रमाण साहित्य उपलब्ध है ।

इस आगम में दो श्रुतस्कंध है । पहले श्रुतस्कंध का नाम **``गाथा षोडशक''** है । इसमें पद्मशैली में 16 अध्ययन है । तथा दूसरे श्रुतस्कंध में 7 अध्ययन है । इन 23 अध्ययनों के नाम और संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

पहले श्रुतस्कंध के 16 अध्ययन

1) समय – इस अध्ययन में धर्म, मोक्ष, पुण्य-पाप, स्वर्ग, नरक आदि को नहीं मानने वाले नास्तिक मतों का खंडन किया है । इस अध्ययन में 4 उद्देश और 88 श्लोकों से आत्म जागृति का उपदेश दिया है ।

2) वैतालीय – इस अध्ययन की रचना वैतालिय छंद में है । इसमें 76 श्लोक द्वारा श्री ऋषभदेव भगवान ने अष्टापद तीर्थ पर 98 पुत्रों को वैराग्यमय उपदेश दिया है ।

3) उपसर्ग परिज्ञा – इस अध्ययन में उपसर्ग के समय धैर्य रखने की प्रेरणा दी है । उपसर्गों को समतापूर्वक सहन कर विजय प्राप्ति का उपदेश दिया है ।

4) स्त्री परिज्ञा – 22 परीषहों में से स्त्री परीषह पर विजय पाना अत्यंत कठिन है । स्त्री परीषह जीतने से होने वाले लाभ और हारने से होने वाले नुकसान का वर्णन इसमें किया है ।

5) नरक विभक्ति – प्रारंभ में आर्य और अनार्य जन का भेद बताकर इस अध्ययन में नरक के मुख्य दो कारण उपसर्ग भीरुता और स्त्री परवशता-बताया है । पहली तीन नरकों में होने वाली परमधामी कृत वेदना और शेष नरकों में क्षेत्र कृत वेदना का वर्णन किया है ।

6) महावीर स्तुति – इस अध्ययन में शासनपति भगवान महावीर की स्तवना की गई है । पर्वतों में श्रेष्ठ ऐसे सुमेरु पर्वत के समान गुणों में सर्वश्रेष्ठ भगवान महावीर से तुलना की गई है ।

7) कुशील परिभाषित – यज्ञ आदि प्रवृति को मोक्ष मार्ग मानने वाले तथा छ काय के जीवों की हिंसा में प्रवृत्त जीव शिथिल आचारी है । ऐसे कुशील-शिथिल आचारी का वर्णन इसमें किया है ।

8) वीर्य – जैन शासन में बताई आराधना में अपने वीर्य-बल को सार्थक करने की सुंदर प्रेरणा इस अध्ययन में दी है । इस अध्ययन में वीर्य के अनेक भेद बताए है–1) कर्म वीर्य और अकर्मवीर्य–प्रमत्त जीवों को कर्मवीर्य और अप्रमत्त जीवो का अप्रमत्त वीर्य । 2) बालवीर्य और पंडित वीर्य–अज्ञानी को बालवीर्य होने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है और ज्ञानी को पंडितवीर्य होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

9) धर्मसार – साधु जीवन को दोषमुक्त बनाने के लिए ``मुनि कों वैराग्य-विवेक आदि गुणों को धारण करते हुए गुरुसेवा करनी चाहिए'', ऐसी अनेक दोषमुक्त और दोषयुक्त प्रवृत्ति का निर्देश करकें धर्म स्वरुप, धर्म प्राप्ति का उपाय आदि मार्गदर्शन इसमें दिया है ।

10) समाधि – इस अध्ययन में समाधान, संतोष और संतोषवृत्ति को ही सच्ची समाधि स्वरुप बताया है ।

11) मार्ग – इस अध्ययन में भव सागर को पार उतरने में जिस मार्ग का आलंबन श्रेयस्कर है ऐसे रत्नत्रयी के मार्ग का वर्णन किया है ।

12) समवसरण – इस अध्ययन में समवसरण का वर्णन कर उसे वाद स्थान बताया है । षड्दर्शन का संक्षेप में वर्णन कर उन मिथ्यादर्शनों के कुमत को हराकर सत्य मत की स्थापना की है ।

13) यथातथ्य – इस अध्ययन में धर्म के यथार्थ स्वरुप का वर्णन होने से इसका नाम यथातथ्य अध्ययन है । इसमें साधक आत्मा के गुण-दोषों, साधना में बाधक-मद स्थान और भगवान महावीर के संसारी पक्ष में जमाई एवं शिष्य जमाली का वर्णन किया है ।

14) ग्रंथ – इस अध्ययन में ग्रहण शिक्षा, आसेवन शिक्षा, उपदेशक के गुण आदि का वर्णन करके समाधि के इच्छुक शिष्य को आजीवन गुरु की निश्रा में रहने का उपदेश दिया है । इस अध्ययन में गुरुकुलवास के लाभ और गुरुकुलवास के त्याग के नुकसान बताये है ।

15) यमकीय – घाती कर्म के क्षय से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है । घाती कर्म का क्षय करने के लिए भावनामार्ग सर्व श्रेष्ठ आलंबन है ।

16) गाथा – गद्य शैली में छह सूत्र द्वारा इस अध्ययन में मुनि जीवन का वर्णन कर उनकी प्रशंसा की गई है ।

द्वितीय श्रुतस्कंध के 7 अध्ययन

1) पुंडरीक – इस अध्ययन में उत्तम पुरुष को पुंडरीक की उपमा दी है । जैसे कमल में पुंडरीक कमल सबसे श्रेष्ठ है वैसे उत्तम पुरुष जो क्षायिक समकिती, यथाख्यात चारित्री, अनाशंसी और शुक्ल ध्यानी सर्व श्रेष्ठ है । इससे अतिरिक्त `जगत्कर्ता ईश्वर है' ऐसी मान्यता और नियतिवाद का खंडन किया गया है ।

2) क्रिया स्थान – इस अध्ययन में द्रव्य क्रिया का महत्त्व बताकर क्रिया के 13 स्थान बताए है जिनमें 12 स्थान कर्म बंध के कारण और अंतिम स्थान कर्म निर्जरा का कारण बताया है ।

3) आहार परिज्ञा – इस अध्ययन में आहार का वर्णन कर निर्दोष आहार की व्याख्या बताई है तथा जीवों की उत्पत्ति स्थान-योनि और जीवन जीने में उपयोगी आहार आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है ।

4) प्रत्याख्यान क्रिया – 11 गद्यात्मक सूत्र द्वारा इस अध्ययन में प्रत्याख्यान का महत्त्व बताया है । पापस्थानकों के प्रत्याख्यान से कर्म निर्जरा और प्रत्याख्यान के अभाव में कर्म का बंध होता है ।

5) अनाचार श्रुत – इस अध्ययन में अनाचार के त्याग का उपदेश दिया है । एकांतवाद और अनेकांतवाद की भेद रेखा बताई है । इस अध्ययन का दूसरा नाम अणगार श्रुत भी है ।

6) आर्द्रकीय – इस अध्ययन में अनार्यभूमि में जन्मे आर्द्रकुमार का वर्णन है । उनका गोशाला, त्रिदंडी और हरितातापस के साथ में हुए वाद-संवाद का रोमांचक वर्णन है । महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी द्वारा रचित 350 गाथा के स्तवन में इस अध्ययन की साक्षी दी गई है ।

7) नालंदीय – 41 सूत्र द्वारा इस अध्ययन में राजगृही नगरी के नालंदापाडे में गणधर श्री गौतमस्वामीजी एवं पार्श्वनाथ प्रभु की परंपरा में हुए उदक श्रमण का वार्तालाप है । इन प्रश्नोत्तार में श्रावक जीवन का वर्णन है ।

सूत्रकृतांग सूत्र के हितोपदेश अंश

1. बुज्झिज्ज तिउट्टेज्जा, बंधणं परिजाणिया ।
किमाह बंधणं वीरो ? किं वा जाणं तिउट्टई ।।

गाथार्थ :- मनुष्य को बोध प्राप्त करना चाहिए । बन्धन को जानकर उसे तोडना चाहिए । (सुधर्मा स्वामी के इन वचनों से श्री जंबूस्वामीजी ने पुनः प्रश्न किया ।) वीर प्रभु ने किसे बंधन कहा है ? किसे जानकर जीव, बन्धन को तोडता है ?

विवेचन :– प्रथम अध्ययन में आत्मा के बंधन और मोक्ष का स्वरुप बताया है । आत्मा, अनादि काल से कर्मों के बंधनो से बंधी हुई है । जैसे सोना, अपनी उत्पत्ति से ही मिट्टी आदि मैल से मलीन है । वैसे ही आत्मा अनादि काल से कर्म के मैल से मलीन है । यह कर्म का मैल ही आत्मा के चार गतिरुप संसार में अत्यंत दुःखदायी कष्टो का मुख्य कारण है । यदि आत्मा पूर्ण रुप से कर्मों से मुक्त हो जाय तो इस संसार से भी मुक्ति हो जाय । परंतु जब तक आत्मा कर्मों के बंधनो से मुक्त न हो, तब तक संसार से आत्मा की मुक्ति कैसे हो ?

शत्रु को परास्त करने के लिए सबसे पहले शत्रु का परिचय जरुरी है । शत्रु कौन है ? उसके पास कितना बल है ? उसके साथी कौन है ? इत्यादि को जाने बिना यदि शत्रु से यद्ध किया जाय, तो अपनी शक्ति की तुलना किये बिना, उठाये इस कदम से जरुर हार ही हासिल होती है ।

आत्म-उन्नत्ति के मार्ग पर चलने साधक आत्मा को सबसे पहले आत्मा के शत्रु को जानना जरुरी है । इसलिए पहले श्लोक में आत्मा के शत्रुओं से युद्ध करने से पहले शत्रु को पहिचानने की प्रेरणा देते हुए कहा है कि, **''आत्म साधक को सबसे पहले बोध प्राप्त करना चाहिए ।''**

चार गति रुप संसार में जीवात्मा को अपने सच्चे स्वरुप का बोध होना अति कठिन है । एकेन्द्रिय से लेकर सभी असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव तो मन रहित है । मन के अभाव में वे मात्र अपने शरीर का पोषण कर सके, इतना ही ज्ञान होता है । वे आहार आदि संज्ञाओ से जीवन निर्वाह योग्य सारे काम कर लेते है, परंतु आत्मिक हितचिंता का बोध, उन सभी जीवों के लिए असंभव है ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय के रुप में रहे चार गति के जीवों में नरक के जीव, प्रतिपल घोर वेदना को सहन कर रहे हैं । वैसे तो नरक के जीवों को जन्म से ही विभंग ज्ञान होता है, फिर भी अधिकांश नारक उस ज्ञान का उपयोग अपने शत्रुओं को जानकर उनसे लडने झगडने में करते हैं । यदि किसी नारकी को कष्टों को सहन करते हुए अपने पूर्व जन्मों के पापों का पश्चात्ताप हो जाय, तो उसे नरक में रहते हुए भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है, परंतु ऐसी आत्माएँ विरल ही होती है । अधिकांश नरक के जीव, सम्यग् बोध से वंचित रहते है । किसी एक को यदि बोध हो भी जाय, तो भी वैक्रिय शरीर के कारण तप-त्याग का आचरण संभव नही है ।

देवों की बात करे, तो जैसे नरक में अति दुःख है, तो देवों को अति सुख है । सर्वोच्च कक्षा के भौतिक सुखों में वे इतने डुबे होते है कि उन्हें आत्मा का विचार आना भी प्रायः असंभव है । तीर्थंकर के जन्म-दीक्षा-केवलज्ञानादि कल्याणकों में जरुर देवतागण परमात्मा के समीप आते है, परंतु उसमें भी वे उत्तर वैक्रिय शरीर से आते है, मूल शरीर से तो वे अपने जन्म स्थान-विमान में भोगों में डुबे रहते है । अधिकांश देवता गण भोग विलासमय अपना आयुष्य पूर्ण कर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में जन्म लेते है । अतः देवो को भी बोधि की प्राप्ति अति दुर्लभ है ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच की बात करे तो उनका जीवन भी प्रायः दुःख में ही प्रसार होता है । दिन भर में उनकी एक ही प्रवृत्ति देखी जाती

है-भोजन ढुंढने की । अधिकांश सारे पशु रात में भुखें ही सोते होंगे । उनकी भूख कभी शांत ही नहीं होती । भूख से अतिरिक्त अज्ञानता, परवशता आदि दु:खों के कारण उनका आत्मिक विकास अति कठिन है । कुदरत की यह कैसी सजा है कि पशुओं को चलने के लिए चार पैर मिले परंतु अपने कार्यों के लिए उनके पास हाथ नहीं है । उससे भी बडा कष्ट तो यह है कि उनके पास स्पष्ट जबान नहीं है । अपने मन के भावों को प्रकट करने के लिए वे एक शब्द का भी उच्चारण नहीं कर सकते । अत: पशु जीवन में भी बोधि की प्राप्ति कठिन है ।

मनुष्य का जीवन अति दु:ख, अति सुख और अति भूख के विषय में संतुलित है । फिर भी अत्मिक बोध में जरुरी ऐसे आर्यदेश, अच्छे कुल मे जन्म, पंचेन्द्रिय परिपूर्णता, दीर्घ आयुष्य, निरोगी शरीर, अनुकूल परिवार आदि सामग्री प्राप्त होना अति कठिन है । इनकी प्राप्ति के बाद भी अधिकांश मनुष्य का जीवन अर्थार्जन, पारिवारिक जिम्मेदारी, प्रमाद, आलस्य, भोग विलास में पूरा हो जाता है । धर्म श्रवण की इच्छा ही पैदा नहीं होता । कदाचित् इच्छा पैदा हो भी जाय, तो उसके योग्य धर्मोपदेशक का योग नहीं होता । धर्मोपदेश प्राप्त होने पर भी उनके वचनों पर श्रद्धा एवं जिनाज्ञा के अनुसार आचरण नहीं हो पाता है ।

चारों गति में मोक्ष मार्ग की संपूर्ण आराधना मनुष्य गति में ही संभव है । परंतु धर्म के बोध बिना जीवन प्रमाद में ही व्यतीत होता है । अत: मनुष्य जीवन में धर्म का बोध खूब जरुरी है । इसलिए प्रस्तुत श्लोक के प्रथम पद में सबसे पहले ही कहा है–

'बुज्झिज्ज !' हे जीव ! तू बोध पा ! अपनी आत्मा को संसार में बांधने वाले जो आत्मिक शत्रु है उन्हें पहिचान ! और उन्हें तोडकर आत्म प्रगति के मार्ग में आगे बढ़ !''

भगवान महावीर ने किसे बंधन कहा है ? और किसे जानकर जीव बंधन को तोड़ता है ? इन दो प्रश्नों के उत्तर में आगे के श्लोकों में बंधन के स्वरुप को बताते हुए कहां है कि सामान्य से जीव रस्सी, श्रृंखला, कारागार आदि को बंधन मानता है, परंतु यह तो द्रव्य बंधन है । इनसे तो मात्र शरीर का बंधन होता है । जबकि आत्म प्रदेशों के साथ एकमेक हुए कर्म क पुद्गल ही वास्तविक भाव बंधन है । ज्ञानावरणीय आदि

आठ प्रकार के कर्मों से आत्मा का बंधन होता है । इन्हे जानकर इनको तोड़ने प्रयत्न करना चाहिए ।

2. ''अणेलिसस्स खेतण्णे, ण विरुज्झेज्ज केणइ।
मणसा वयसा चेव, कायसा चेव चक्खुमं ।।''

भावार्थ :– सूत्रकृतांग सूत्र के पंद्रहवे-यमकीय अध्ययन में मोक्षाभिमुख और संसार का अंत करने वाले साधक के लक्षण बताते हुए, वास्तव में देखनेवाला कौन है ? उसका लक्षण बताया है ।

सामान्य से जिसके पास आँखे है, उसे देखनेवाला माना जाता है । परंतु उस व्यक्ति के देखने से क्या लाभ ? जिससे आत्मा पाप कर्मों का अर्जन कर दुर्गति के गर्त में गिर जाय । उसे प्राप्त हुई हर शक्तियाँ निरर्थक है, जो आत्मा को क्रोधादि क्लेशों का कारण बने । इसी उद्देश्य से ग्रंथकारश्री कहते है- जिसके समान दूसरा कोई उत्तम पदार्थ नहीं है, ऐसे संयम को अथवा तीर्थंकर परमात्मा द्वारा बताए धर्म के मर्म को जानने वाला है, जो किसी भी प्राणि के साथ मन, वचन और काया से वैर-विरोध नहीं करता है वही परमार्थ से देखनेवाला तत्त्व दर्शी है ।

3. 'जे छेए विप्पमादं न कुज्जा'

भावार्थ – सूत्रकृतांग सूत्र के चौदहवें `ग्रंथ' नाम के अध्ययन में निर्ग्रंथ साधु को गुरुकुलवास का महत्त्व और लाभ बताया है । साधु को प्रमाद दोष से मुक्त रहने की हितशिक्षा देते हुए कहा है कि आत्मसाधक को संयम पालन तथा गुरु की आज्ञा पालन में कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

सामान्य से कोई व्यक्ति अपने कार्य करने में आलस्य करता हो, तब उसे प्रमादी कहा जाता है परंतु मात्र आलस्य ही प्रमाद नहीं, प्रमाद के पांच भेद है– मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा ।

1) मद्य–नशीले पदार्थ का सेवन करना ।
2) विषय–पाँच इन्द्रिय के अनुकूल विषयों पर आसक्ति करना ।
3) कषाय–क्रोध-मान-माया-लोभ का सेवन करना ।
4) निद्रा–पांच प्रकार की निद्रा का सेवन करना ।
5) विकथा-–राज कथा, भोजनकथा, देशकथा और स्त्रीकथा करना ।

इन पांच प्रमादों के सेवन से आत्मा अपने आत्मिक भाव से दूर हो जाती है, जिससे आत्मा को पाप कर्म का बंध होता है । प्रमाद, साधु

जीवन कट्टर शत्रु है । आत्म साधना में प्रगतिशील बने साधुने छठे गुणस्थानक को प्राप्त किया है । यहाँ तक पहुँचने के लिए मिथ्यात्व और अविरति के आश्रव द्वारों को बंद कर दिया है, अब प्रमाद, कषाय और योग के आश्रव द्वारो को बंद करने की साधना में प्रयत्नशील बनना है । यदि आत्मा प्रमाद के द्वार बंद कर दे तो अन्तर्मुहुर्त में सर्व घाति कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर सकती है ।

अतः चारित्र रुपी सर्व श्रेष्ठ शस्त्र को प्राप्त कर साधु को अपने जीवन में प्रमाद शत्रु पर विजय पाने विशेष प्रयत्न करना चाहिए ।

4. एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं ।

भावार्थ :– किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करना, यह ज्ञानियों के वचन का सार है ।

चींटी से लेकर महाकाय हाथी तक सभी जीवों को अपने प्राण प्यारे होते हैं । सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना किसी को पसंद नहीं, अतः किसी भी जीव की हिंसा नहीं करना, यही महापुरुषों का वचन है ।

प्रमाद के योग से अन्य जीवों के मन, वचन और काया को पीडा पहुँचाना, उसे हिंसा कहा जाता है ।

जब हम किसी जीव को जीवन नहीं दे सकते हैं तो हमारे अपने तुच्छ सुख के लिए दूसरे जीवों के प्राण लेने का हमें क्या अधिकार है ? प्रकृति का यह अटल नियम हैं कि तुम दूसरे जीवों को जीवन दोंगे, सुख दोंगे तो तुम्हें जीवन मिलेगा और तुम दूसरे जीवों को दुःख दोंगे, तो तम्हें ही दुःख मिलेगा है ।

पर्वत की घाटियों में हम जब अच्छे शब्द बोलते हैं तो प्रतिध्वनि के रुप में वे ही अच्छे शब्द हमें सुनाई देते हैं और जब अपशब्द बोलते हैं तो वे ही अपशब्द हमें पुनः सुनाई देते है । दूसरे जीवों के साथ हमारा जो व्यवहार होगा, कुदरत हमारे साथ वही व्यवहार करेगी ।

दीर्घ आयुष्य, सुंदर रुप, निरोगी काया और प्रसिद्धि ये सब अहिंसा के फल हैं, जब कि अल्प आयुष्य, अकाल मृत्यु, रोगी काया और अपयश ये जीव-हिंसा के फल है ।

जैसे दूध का सार मलाई है, फुलों का सार सुगंध है, वैसे ही ज्ञान का सार हिंसादि पापों का त्याग है । मलाई के बिना दुध की कोई

कींमत नहीं है, सुगंध के बिना फुल की कोई कींमत नहीं है वैसे ही हिंसादि पाप कार्य के त्याग बिना ज्ञान की भी कोई कींमत नहीं है ।

जगत् का प्रत्येक प्राणी जीवन जीना चाहता है, मरना किसी को भी पसंद नहीं है । जगत् के सभी प्राणियों को आत्मतुल्य मानने वाली अनुभव ज्ञानी आत्मा ही इस बात को समझ सकती है कि– **''जैसे मुझे अपने प्राण प्रिय है, वैसे ही जगत् के सभी प्राणियों को भी अपने प्राण प्रिय है । यदि कोई मुझे पीड़ा दे, सताए, मारे, पीटे या डराए तो वह व्यवहार मुझे पसंद नहीं तो फिर मैं किसी अन्य प्राणी के साथ ऐसा व्यवहार क्यों करुं ।''**

जो आत्मा से संबंधित जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्त्रव-संवर, निर्जरा-बंध और मोक्ष तत्त्व को जानता है, वहीं सम्यग् ज्ञाता बन सकता है । हिंसा आदि पाप कार्य में प्रवृत्ति अथवा पाप कार्यों की अविरति, आत्मा के कर्मबन्धन का मुख्य कारण है । कर्मबंधन के इन कारणों को जानकर ज्ञानी आत्मा हिंसा आदि पापों का त्याग करे, इसी में प्राप्त किये ज्ञान की सच्ची सफलता है ।

5. संबुज्झह किं न बुज्झह ?

भावार्थ :– हे आत्मन् ! तू बोध पा ।

अनंतकाल से भ्रमण कर रही आत्मा को इस संसार में बोधि की प्राप्ति अत्यंत ही दुर्लभ है ।

बोधि के अभाव में की गई आराधना साधना का भी कोई अर्थ नहीं है ।

अपनी आत्मा के भूतकाल की ओर नजर करते है तो पता चलता है कि आत्मा का अनंतकाल अव्यवहार राशि की निगोद में ही व्यतीत हुआ हैं, जहां आत्मा ने एक मात्र जन्म-मरण ही किए हैं ।

अपने एक श्वासोच्छ्वास में निगोद में रहे अनंतानंत जीवों के 17½ भव हो जाते हैं । मात्र एक मुहूर्त में निगोद जीव के 65,536 भव हो जाते हैं । हम भी अनंत काल वही थे । कैसा था वह जीवन ! जहां सतत जन्म-मरण की ही पीडा थी ।

किसी एक आत्मा के मोक्ष में जाने पर अव्यवहार राशि की निगोद में से एक आत्मा व्यवहार राशि में आती है । उसके बाद भयंकर कष्ट

सहन करते करते आत्मा पृथ्वीकाय आदि तथा बेइन्द्रिय आदि त्रस भवों को प्राप्त करती है । उसके बाद नदी-घोल-पाषाणन्याय से कष्ट सहते हुए आत्मा, मानव भव प्राप्त करती है । मानव भव की प्राप्ति के बाद आर्य-देश, आर्यकुल, दीर्घ- आयुष्य, पंचेन्द्रिय-पूर्णता, सद्धर्म का श्रवण आदि अत्यंत ही दुर्लभ है ।

देवों को भी दुर्लभ ऐसी मानव भव आदि सामग्री मिलने के बाद लेश भी प्रमाद करने जैसा नहीं है । बाह्य-पौद्गलिक भावों में लेश भी आकर्षित हुए बिना बोधि की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करने में ही जीवन की सफलता है ।

नरक के जीवों को धर्म दुर्लभ है, क्योंकि वहां देव-गुरु और धर्म की सामग्री नहीं है ।

तिर्यंच गति में धर्म दुर्लभ हैं, क्योंकि वहां धर्म प्राप्ति के लिए विवेक बुद्धि नहीं है ।

देवगति में धर्म दुर्लभ हैं, क्योंकि वहां भौतिक सुख की बहुलता है ।

6. सयं अतिवायए पाणे, अदुवा अन्नेहिं घायए ।
हणन्तं वाणुजाणाइ, वेरं वड्ढई अप्पणो ।।

भावार्थ :– जो व्यक्ति स्वयं दूसरे प्राणियों की हिंसा करता हैं, दूसरों के पास हिंसा कराता हैं अथवा हिंसा करनेवाले की अनुमोदना करता हैं, वह अपने वैरभाव को ही बढाता है ।

किसी भी जीवात्मा की हिंसा करने में कुछ भी लाभ नहीं है । दूसरे जीवों के मन, वचन और काया के योगों को ठेस पहुँचाने से उन जीवों को शारीरिक और मानसिक दुःख होता है । उस दुःख से हिंसक व्यक्ति को नवीन कर्म बंध होता है और वह कर्म जब उदय में आता हैं, तब नाना प्रकार की पीडाएँ सहन करनी पडती है ।

आज की कोर्ट, काया से गुन्हा करनेवाले को सजा करती हैं, परंतु वह भी सजा तभी करती है, जब कानून के द्वारा उसका गुन्हा सिद्ध हो गया हो । यदि कानून की दृष्टि से व्यक्ति गुन्हेगार सिद्ध नहीं होता हो तो गुन्हेगार होने पर भी आज की कोर्ट उसे कुछ भी सजा नहीं करती है । परंतु कर्म सत्ता तो मन, वचन और काया तथा करण, करावण और अनुमोदन से होनेवाले गुन्हे की सजा करती है ।

स्वयंभूरमण समुद्र में एक हजार योजन लंबे मत्स्य की आंख की पांपण में पैदा होनेवाला तंदुलिक मत्स्य मात्र मन के पाप द्वारा 7वीं नरक के योग्य आयुष्य का बंध कर देता है । तंदुलिक मत्स्य का आयुष्य सिर्फ अन्तर्मुहूर्त जितना ही होता है, परंतु मात्र हिंसा के रौद्रध्यान के कारण वह 7वीं नरक में चला जाता है ।

मानसिक पाप भी कितना भयंकर पाप है ! अतः हिंसा के पाप से बचने के लिए अवश्य प्रयत्न करना चाहिये ।

किसी जीव की हिंसाकर हम अपने दुश्मन ही खडा कर रहे होते है । क्योंकि जिसकी हम हिंसा करेंगे, उसके दिल में हमारे प्रति वैर की वृत्ति ही पैदा होनेवाली है । अतः अपने जीवन में हिंसा के त्याग के लिए सतत प्रयत्नशील बनना चाहिये ।

7. लव सप्तम देवो

भावार्थ :– 'लव' शब्द जैनागम में काल को बतानेवाला एक पारीभाषिक शब्द है । सात लव अर्थात् लगभग साढे चार मिनिट का काल । अनुत्तर देव विमान में 33 सागरोपम काल के आयुष्य वाले असंख्य देवता ऐसे है, जिन्हे **लव सप्तम** कहा जाता है । वैसे तो वे सभी देवता एक समान है, सभी अहमिन्द्र है । इनमें कोई भेद नहीं है, फिर भी इन देवताओं को लव सप्तम कहने के पीछे इनके पूर्व भव की अधूरी साधना है ।

पूर्व भव में उन साधकों की श्रमण जीवन साधना इतनी श्रेष्ठ और निर्मल थी कि उसके द्वारा वे मोक्ष को प्राप्त कर सकते थे । परंतु साढें चार मिनिट जितना काल कम पड़ा । अर्थात् उनके आयुष्य में यदि साढे चार मिनिट जितना काल अधिक होता तो उस साधना के बल पर वे अवश्य ही केवलज्ञान प्राप्त कर लेते । परंतु इतने काल मात्र की कमी के कारण उनके मोक्ष में 33 सागरोपम से अधिक कुछ संख्याता वर्ष का काल विलंब हो गया ।

इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि श्रमण जीवन की साधना कितनी श्रेष्ठ और ऊँची है । शास्त्रों में कहा है–यदि उत्कृष्ट भावों की स्पर्शना हो जाय, तो आत्मा एक दिन के चारित्र से भी केवलज्ञान पाकर मोक्ष में जा सकती है ।

अतः रत्नत्रयी की आराधना में अप्रमत्त भाव से उद्यम करने के लिए हमे प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

3

श्री स्थानांग सूत्र

द्वादशांगी का तीसरा अंग-**स्थानांग सूत्र** है । प्राकृत भाषा में इसे **'ठाणांग'** नाम से जाना जाता है । पूर्व काल में यह सूत्र 72,000 पद प्रमाण था । वर्तमान में आगम मात्र 783 सूत्र स्वरुप 3770 श्लोक प्रमाण उपलब्ध है । इस सूत्र पर निर्युक्ति, भाष्य तथा चूर्णि उपलब्ध नहीं है ।

नवांगी टीकाकार पूज्य आचार्य श्री अभयदेवसूरीश्वरजी द्वारा रचित 14,250 श्लोक प्रमाण बृहद्वृत्ति, पूज्यश्री कुशलवर्धन गणी के शिष्य पूज्य नगर्षि गणी द्वारा रचित 10500 श्लोक प्रमाण **'दीपिका'** तथा पूज्य सुमति कल्लोल महाराज रचित 13604 श्लोक प्रमाण **बृहद् वृत्ति** है ।

इस प्रकार इस आगम पर कुल मिलाकर **42,054 श्लोक प्रमाण साहित्य** वर्तमान में उपलब्ध है ।

इस आगम सूत्र में एक से दस तक की संख्या में समाविष्ट जैन शासन को मान्य अनेक पदार्थों का संग्रह किया गया है । गद्य शैली में रचे 783 मूल सूत्रों में द्रव्यानुयोग विषय के 426 सूत्र, चरणकरणानुयोग विषय के 214 सूत्र, गणितानुयोग विषय के 109 सूत्र और धर्मकथानुयोग विषय के 51 सूत्र-इस तरह कुल 800 सूत्र होते है, परंतु 17 सूत्र का समावेश दो अनुयोग में होने से ग्रंथ के मात्र 783 सूत्र होते है ।

इस आगम में 10 अध्ययन का मात्र एक श्रुतस्कंध है । इन दश अध्ययनों में एक से लेकर दस तक के स्थान है । जिनका परिचय इस प्रकार है–

1) एक स्थान :– इस अध्ययन में एक संख्यावाले अनेक पदार्थों का वर्णन है । आत्मतत्व का निर्देश करने कहा है-**'एगे आया'** अर्थात् 'आत्मा एक है ।' इस कथन का तात्पर्य है कि–आत्म-प्रदेश की अपेक्षा सभी आत्माओं के आत्म प्रदेश की संख्या एक समान है । सभी आत्मा सुख चाहती है और दुःख से दूर होना चाहती है । संसार में आत्मा

अकेली है, अकेली जन्म लेती है और अकेली ही मरण पाती है । आत्मा के किये पुण्य-पाप के फल स्वरुप सुख-दु:ख की प्राप्ति आत्मा को ही होती है ।

2) दो स्थान :– इस अध्ययन में दो संख्या वाले पदार्थों का वर्णन है । जगत् में **सभी पदार्थ**–जीव या अजीव स्वरुप है । **साधना**–ज्ञान और क्रिया स्वरुप है । **प्रमाण**–प्रत्यक्ष और परोक्ष रुप है । प्रभुवीर परमात्मा ने पदार्थों का निरुपण करके एकांतवादी, ज्ञानवादी, क्रियावादी, प्रत्यक्षवादी, परोक्षवादी आदि के मिथ्यामतों का खंडन किया है ।

3) तीन स्थान – इस अध्ययन में तीन संख्या वाले पदार्थों का वर्णन है । संसार वर्ती **सभी जीवों** के पुरुष, स्त्री और नपुंसक रुप तीन वेद है । वैसे ही सुखी-दु:खी और तटस्थ तीन प्रकार के **मनुष्य** है । साधु के **पात्र** भी तुंबडा, लकडी और मिट्टी के रुप में तीन प्रकार है । साधुओं को **वस्त्र धारण करने** के भी तीन कारण–1) लज्जा निवारण 2) जुगुप्सा निवारण 3) परिषह निवारण रुप है । तीन प्रकार के मरण भी बताए है ।

4) चार स्थान – इस अध्ययन में चार संख्या वाले पदार्थों का वर्णन है । दुर्गति और सुगति के चार कारण, देवों के मनुष्य लोक में नहीं आने के चार कारण, तीर्थंकरों के च्यवनादि चार कल्याणक समय तीन भुवन में उद्योत और निर्वाण कल्याणक समय अंधकार का कारण, नरक गति के महा-आरंभ आदि चार कारण, मनुष्य के स्वभाव को वर्णन करने वृक्ष के दृष्टांत से मन के और बाहर के व्यवहारों में वक्रता और सरलता की चतुर्भंगी आदि अनेक ज्ञानवर्धक विषयों का संग्रह किया गया है ।

5) पांच स्थान – इस अध्ययन में पांच संख्यावाले पदार्थों का वर्णन है । पांच महाव्रत, पांच अणुव्रत, ज्ञान के पांच भेद, दुर्लभबोधि और सुलभ बोधि के पांच कारण, पंचास्तिकाय, पांच समिति, स्वाध्याय, पच्चक्खाण की पांच शुद्धि, गंगा आदि पांच नदियाँ आदि का वर्णन है ।

6) छह स्थान – इस अध्ययन में छह संख्यावाले पदार्थों का वर्णन है । जीवो के छ:काय रुप छह भेद, छह संघयण, छह संस्थान, **जीवादि की छह दिशा से गति-आगति,** आहार लेने के (भोजन करने के) छह कारण, भोजन नहीं करने के छह कारण, छह ऋतु, छह प्रकार के बाह्य और अभ्यंतर तप, आचार्य के छह गुण आदि का वर्णन है ।

7) सात स्थान – इस अध्ययन में सात संख्या में रहे पदार्थों का वर्णन है । नैगम आदि सात नय, चक्रवर्ती के 7 एकेन्द्रिय और 7 पंचेन्द्रिय रत्न, 7 भय, 7 कुलकर, 7 समुद्घात, 7 निह्नव आदि का वर्णन है ।

8) आठ स्थान – इस अध्ययन में आठ संख्या में रहे पदार्थों का वर्णन है । 8 कर्म, 8 मद, संसारी जीवों के 8 भेद, माया के 8 परिणाम, आचार्य की 8 संपदा, प्रायश्चित्त के 8 स्थान, आयुर्वेद के 8 अंग, सिद्धशिला के मध्यभाग में 8 योजन की चौड़ाई आदि का वर्णन है ।

9) नौ स्थान – इस अध्ययन में नौ संख्या में रहे पदार्थों का वर्णन है । 9 ब्रह्मचर्य की गुप्ति, जीवादि 9 तत्त्व, रोगोत्पत्ति के 9 कारण, चक्रवर्ती की 9 निधि, पुण्यबंध के 9 कारण, भगवान महावीर के आलंबन से 9 आत्माओं ने तीर्थंकर नाम कर्म का बंध आदि का वर्णन है ।

10) दस स्थान – इस अध्ययन में दस संख्या में रहे पदार्थों का वर्णन है । अन्य की अपेक्षा इस अध्ययन में सबसे अधिक विषयों का वर्णन है । **10 प्रकार की साधु-सामाचारी,** 12 देवलोक के 10 इन्द्र, क्रोधोत्पत्ती के 10 कारण, संयम-असंयम के 10 कारण, संवर-असंवर के 10 कारण, मान के 10 कारण, समाधि-असमाधि के 10 भेद, 10 दिशाएँ, भगवान महावीर के छद्मस्थ काल में आए 10 स्वप्न आदि का वर्णन है ।

विश्व के सभी पदार्थों को स्याद्वाद दृष्टि से निरुपण करते इस ग्रंथ का अभ्यास से जीवन में गीतार्थता प्राप्त होती है । श्री व्यवहार सूत्र नाम के छेद ग्रंथ में कहा है कि–जघन्य से स्थानांग और समवायांग सूत्र के ज्ञाता ही आचार्य आदि पद प्राप्ति के योग्य है ।

स्थानांग सूत्र के हितोपदेश

(1) 'एगे आया' ।

भावार्थ :– जैन दर्शन अनेकांत और स्याद्वाद मय है । इससे एक ही पदार्थ को देखने के अनेक नजरीये समाने आते है । पदार्थ को मात्र एक ही नजरीये से देखने पर पदार्थ का स्पष्ट बोध नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अनंत धर्मात्मक है । पदार्थ के अनंत धर्मो का सूक्ष्म बोध पाने के लिए नय की अपेक्षा रहती है । अतः जैन दर्शन में द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय बताये है ।

भूत-भविष्य और वर्तमान काल में पदार्थ के पर्याय बदलते रहते है, परंतु उस पदार्थ का मूल स्वभाव नहीं बदलता है । बदलने वाला पर्याय पदार्थ का विशेष धर्म है और नहीं बदलने वाला स्वभाव, पदार्थ का सामान्य धर्म है । जैसे एक ही सोने से पहले हार बनाया जाय, फिर कंगन, फिर कंदोरा आदि बनाये जाने पर भी द्रव्य के रुप में सोना तो वही का वही रहता है, मात्र पर्याय बदलते रहते है । इस तरह पदार्थ के नहीं बदलने वाले सामान्य धर्म का प्रतिपादन द्रव्यार्थिक नय से होता है और बदलने वाले विशेष धर्म का प्रतिपादन पर्यायार्थिक नय से होता है ।

प्रस्तुत पद में आत्मा का स्वरुप बताते हुए कहा है–``आत्मा एक है ।''

इस विराट विश्व में रही प्रत्येक आत्मा-चाहे वह संसारी हो या मुक्त हो, देव हो या दानव हो, नारक हो या निगोद हो, नर ही या नारायण हो, **सभी आत्माएँ आत्मिक गुणों की अपेक्षा से एक समान है ।** अर्थात्–प्रत्येक आत्मा में ज्ञान और दर्शन उपयोग होने से सभी को सुख-दुःख का संवेदन होता है । इस कारण `द्रव्यार्थिक नय से आत्मा एक है' ऐसा कहा गया है । परंतु पर्यायार्थिक नय से आत्मा एक नहीं, अनेक है । इस जगत् में अनंतानंत आत्माएँ रही हुई है ।

छह दर्शनों में नैयायिक आदि दर्शन, आत्मा को एक और विश्व व्यापी मानती है । परंतु जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक प्राणी में एक-एक स्वतंत्र आत्मा है, जो मात्र शरीर व्यापी है । **स्वतंत्र आत्मा ही स्व-कर्म की कर्ता है और कर्म की भोक्ता है ।** कोई भी आत्मा, अन्य आत्मा के साथ कर्मों का आदान-प्रदान नहीं कर सकती है । इस अपेक्षा से आत्मा अकेली है । अकेली आत्मा चार गति रुप संसार में परिभ्रमण करती है । प्रत्येक गति में आत्मा, अनेक आत्माओं के संबंध में आती है, फिर भी अनेकों के बीच में आत्मा एक ही है । इस प्रकार का चिंतन करते हुए, हमे स्वजन-परिजनों के निमित्त होनेवाले राग-द्वेष का त्याग कर एकत्व भावना से आत्मा को भावित बनाना चाहिए ।

(2) चत्तारि सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-आहार सण्णा, भय सण्णा, मेहुण सण्णा, परिग्गह सण्णा ।

भावार्थ : सभी संसारी आत्माओं में जन्म-जन्मांतर के संस्कारों से चार प्रकार की संज्ञाएँ रही हुई है–आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथून संज्ञा और परिग्रह संज्ञा । जैसे पेट्रोल के भीतर आग छीपी हुई है, चिनगारी के संपर्क से वह आग भडक उठती है । वैसे ही अनादि काल से आत्मा के भीतर ये चार संज्ञाएँ रही हुई है । **निमित्त मिलते ही ये संज्ञाएँ जागृत होती है ।** चारों संज्ञा की जागृति में चार-चार विशेष कारण बताए गए है ।

(1) आहार संज्ञा – यद्यपि आत्मा का मूल स्वभाव अणाहारी है, फिर भी आहार संज्ञा के कारण संसार में रही शरीरस्थ आत्मा को आहार लेना पडता है । **आहार संज्ञा की उत्पत्ति में चार कारण है (i) पेट खाली होना, (ii) क्षुधा वेदनीय कर्म का उदय, (iii) आहार संबंधी बातों को सुनने से उसे खाने की बुद्धि, (iv) आहार संबंधी विचार करना ।** इन चारों में से किसी एक की भी उपस्थित होने से जीवात्मा को भूख का अनुभव होता है । उस भूख के कारण वह आहार प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनती है । संसार की चारो गतियों के सभी जीवों में आहार संज्ञा रही हुई है, फिर भी तिर्यंच गति के प्राणियों में इसकी प्रबलता देखी जाती है ।

(2) भय संज्ञा – आत्मा के भीतर अनंत वीर्य गुण रहा हुआ है, जिससे आत्मा अनंत शक्तिमान है । फिर भी भय संज्ञा के कारण, भय के निमित्त मिलने पर अथवा न मिलने पर भी आत्मा भयभीत बनती है । **भय संज्ञा की उत्पत्ति में चार कारण है–(i) सत्त्वहीनता । (ii) भय मोहनीय कर्म का उदय । (iii) भय पैदा करनेवाली डरावनी बाते सुनना । (iv) भय संबंधी विचार करना ।** इन चारों में से किसी एक कारण का भी उपस्थित होने से जीवात्मा को भय का अनुभव होता है । वैसे तो चारों गतियों के सभी जीवों में भय संज्ञा रही हुई है, फिर भी नरक गति के नारकों में इसकी प्रबलता देखी जाती है ।

(3) मैथून संज्ञा – आत्मा में मोहनीय कर्म के नाश से वीतरागता गुण प्रकट होता है । परंतु जब तक मोहनीय कर्म का सर्वथा नाश न हो, तब तक अवेदी ऐसी आत्मा को पुरुष, स्त्री अथवा नपुंसक के रुप में जन्म लेना पड़ता है । मैथून संज्ञा के कारण जीवात्मा को विजातीय के

शब्द, रुप, रस, गंध और स्पर्श का आकर्षण पैदा होता है । **मैथून संज्ञा की उत्पत्ति में चार कारण है– i) शरीर में मांस, खून, वीर्य आदि सात धातु का संचय होना । ii) पुरुष वेद, स्त्रीवेद अथवा नपुंसक वेद मोहनीय कर्म का उदय होना । iii) मैथून संबंधी बाते सुनना । iv) मैथून संबंधी विचार करना ।** इन चारों में से किसी एक कारण के उपस्थित होने पर जीवात्मा को विकार-वासना की उत्तेजना होती है । स्त्री को पुरुष के साथ, पुरुष को स्त्री के साथ और नपुंसक को उभय के साथ संबंध करने के लिए जीवात्मा, नाना प्रकार के प्रयत्न करती है । वैसे तो चारों गति के सभी जीवों में मैथून संज्ञा रही हुई है । यावत् एकेन्द्रिय जीवो में भी मैथून संज्ञा का जोर होता है, फिर भी मनुष्य गति में इसकी प्रबलता देखी जाती है ।

(4) परिग्रह संज्ञा – आत्मा के भीतर अनंत गुण रत्नों का भंडार है । फिर भी इनके परिचय के बिना जीवात्मा को बाह्य धन संपत्ति पाने और बढाने की इच्छा होती है । धन को पाने के लिए वह माया-कपट का आश्रय लेती है । **परिग्रह संज्ञा की उत्पत्ति में चार कारण है–i) परिग्रह का त्याग परिमाण न होना । ii) लोभ मोहनीय कर्म का उदय होना । iii) धन-धान्य आदि नौ प्रकार के परिग्रह को देखने से उन्हें पाने की बुद्धि होना । iv) परिग्रह संबंधी विचार करना ।** इन चारों में से किसी एक का भी उपस्थित होने पर जीवात्मा को धन पाने का आकर्षण होता है । वैसे तो चारो गति के सभी जीव परिग्रह रुपी ग्रह से ग्रसित है, फिर भी देव गति मे इसकी प्रबलता देखी जाती है ।

ये चारों संज्ञाएँ जीवात्मा को दुर्ध्यान कराती है । अतः दुर्ध्यान से बचने के लिए इन संज्ञाओं के जागने के कारणों से दूर रहना चाहिए एवं संज्ञाओं को जीतने के लिए दान, शील, तप और भाव धर्म की आराधना में विशेष प्रयत्न करना चाहिए ।

(3) पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा-सोतिंदिय मुंडे,
चक्खिंदिय मुंडे, घाणिदियमुंडे,
जिब्भिंदियमुंडे, फासिंदिय मुंडे ।
अहवा पंच मुंडा पण्णत्ता, तं जहा-कोहमुंडे,
माणमुंडे, मायामुंडे, लोभमुंडे, सिरमुंडे ।

भावार्थ : भारतीय संस्कृति में जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, तब गृहस्थ लोग उस निमित्त हुए शोक को प्रकट करने मस्तक का मुण्डन करते है । वैसे ही जब कोई व्यक्ति गृहस्थ जीवन का त्याग कर संन्यास का स्वीकार करता है, तभी भीतर के वैराग्य को प्रकट करने मस्तक का मुण्डन करते है । परंतु **मात्र मस्तक के बालों का मुण्डन पर्याप्त नहीं, मुण्डन तो मन का करना है ।** प्रस्तुत सूत्र में इन्द्रिय जय स्वरुप मुण्डन के पांच प्रकार बताए है–

1) श्रोतेन्द्रिय मुण्डन – शुभ-अशुभ शब्दों में होनेवाले राग-द्वेष के विजेता बनना ।

2) चक्षुरिन्द्रिय मुण्डन – शुभ-अशुभ रुपों में होनेवाले राग-द्वेष के विजेता बनना ।

3) घ्राणेन्द्रिय मुण्डन – शुभ-अशुभ गंध में होनेवाले राग-द्वेष के विजेता बनना ।

4) रसनेन्द्रिय मुण्डन– शुभ-अशुभ रसों में होनेवाले राग-द्वेष के विजेता बनना ।

5) स्पर्शनेन्द्रिय मण्डन– शुभ-अशुभ स्पर्शों में होनेवाले राग-द्वेष के विजेता बनना ।

इस प्रकार पांचों इन्द्रिय के अनुकूल और प्रतिकूल विषयों में राग-द्वेष का त्याग कर समताभाव में लीन बनना ही मस्तक के मुण्डन का सच्चा फल है ।

अथवा,

कषाय पर विजय स्वरुप अन्य पांच प्रकार के मुण्डन बताए है–

1) क्रोध मुण्ड – क्रोध कषाय के विजेता बनना ।
2) मान मुण्ड – मान कषाय के विजेता बनना ।
3) माया मुण्ड – माया कषाय के विजेता बनना ।
4) लोभ मुण्ड – लोभ कषाय के विजेता बनना ।
5) शिरो मुण्ड – मात्र मस्तक का मुण्डन करना ।

पांच इन्द्रिय के विषयो की आसक्ति और चार कषायों पर विजय पाने किया गया मुण्डन ही सच्चा मस्तक मुण्डन है ।

(4) चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा ।

भावार्थ : भोजन के षड्रस एवं साहित्य के नौ रसों को भी फिका कर दे, ऐसा सबसे स्वादिष्ट रस विकथा का है । वैसे तो व्यक्ति को धर्म की बातो में रस नहीं पडता है । स्वाध्याय, धर्मकथा और कायोत्सर्ग में उत्साह नहीं आता है । जबकि फिजूल की बातों में व्यक्ति घंटो तक खडा-खडा बातें करे, तो भी उसे कंटाला नहीं आता है ।

वास्तव में विकथा, आत्मा के परम शत्रु-प्रमाद का ही एक भेद है । इसके चार भेद है– i) स्त्री कथा ii) भक्त कथा iii) देश कथा iv) राज कथा । पुनः इन चार के चार-चार भेद है ।

भावार्थ–प्रस्तुत सूत्र में मेघ के चार प्रकार बताकर, उनकी पुरुष के साथ गरजने, चमकने और बरसने के विकल्पों से तुलना की है ।

1) स्त्री कथा :–

i) स्त्रियों की जाति की चर्चा करना ।

ii) स्त्रियों के कुल की चर्चा करना ।

iii) स्त्रियों के रूप की चर्चा करना ।

iv) स्त्रियों के वेष-भूषा की चर्चा करना ।

2) भक्त (भोजन) कथा :–

i) रसोई की सामग्री आटा, दाल, नमक आदि की चर्चा करना ।

ii) पके या बिना पके अन्न या व्यंजनादि शाक-सब्जी की चर्चा करना ।

iii) रसोई बनाने के लिए आवश्यक सामान और धन आदि की चर्चा करना ।

iv) रसोई में लगे समान और धनादि की चर्चा करना ।

3) देश कथा :–

i) विभिन्न देशो में प्रचलित विधि-विधानों की चर्चा करना ।

ii) विभिन्न देशों के गढ़, किल्ले, महल आदि की चर्चा करना ।

iii) विभिन्न देशों के विवाहादि रीति-रिवाजों की चर्चा करना ।

iv) विभिन्न देशों के वेष-भूषादि की चर्चा करना ।

4) राज कथा :–

i) राजा के नगर प्रवेश के समारोह की चर्चा करना ।

ii) राजा के युद्ध आदि के लिए नगर से निकलने की चर्चा करना ।

iii) राजा के सैन्य, सैनिकों और वाहनों की चर्चा करना ।

iv) राजा के खजाने और धान्य-भण्डार आदि की चर्चा करना ।

इन विकथाओ के द्वारा साधक-आत्मा को ब्रह्मचर्य में स्खलना उत्पन्न होती है, स्वाद में लोलुपता जगती है, आरंभ-समारंभ को प्रोत्साहन मिलता है और आत्म साधना में बाधा पहुँचती है । अतः इन विकथाओं का त्याग कर धर्म कथाओं में मन-वचन और काया को एकाकार करना चाहिए ।

(5) चत्तारि मेहा पण्णत्ता, तं जहा गज्जित्ता णाममेगे णो वासित्ता, वासित्ता णामेगे णो गज्जित्ता, एगे गज्जित्ता वासित्तावि, एगे णो गज्जिज्जा णो वासित्ता । एवमेव चत्तारि पुरिसजाया ।

1) मेघ के समान मनुष्य के भी गरजने और बरसने के रुप में चार भेद है ।

1) गरजते है पर बरसते नहीं – दानादि बड़े-बड़े काम करने का वादा करते है, किन्तु उन कामों को पूरा नहीं करते है । **2) बरसते है पर गरजते नहीं –** बड़े बड़े काम कर लेते है, किन्तु उन कामों की उद्घोषणा नहीं करते है । **3) गरजते है और बरसते भी है –** बड़े बड़े काम करने की उद्घोषणा करके उन्हें पूरा भी करते है । **4) गरजते भी नहीं और बरसते भी नहीं –** न तो काम करने का वादा करते है न ही काम करते है ।

2) इसी प्रकार गरजने और चमकने के चार भेद है ।

1) गरजते है पर चमकते नहीं – दानादि की घोषणा तो करते है, परंतु नहीं देने से चमकते नहीं है । **2) चमकते है, पर गरजते नहीं –** दानादि देकर चमकते है, परंतु घोषणा नहीं करने से गरजते नहीं

है । **3) गरजते भी है और चमकते भी है –** दानादि की घोषणा करते है और देकर चमकते भी है । **4) गरजते भी नहीं और चमकते भी नहीं –** दानादि की घोषणा भी नहीं करते और नहीं देने से चमकते नहीं है ।

3) इसी प्रकार बरसने और चमकने के भी चार भेद है ।

1) बरसते है पर चमकते नहीं – दानादि देते है परंतु दिखावा नहीं करने से चमकते नहीं है । **2) चमकते है, पर बरसते नहीं है –** दानादि देने का मात्र आडंबर करते है परंतु देते नहीं है । **3) बरसते है और चमकते भी है –** दानादि करते है और उसका आडंबर भी करते है । **4) बरसते नही और चमकते भी नहीं –** दानादि देते भी नहीं और आडंबर भी नहीं करते है ।

(6) पंचविधे जीवस्स णिज्जाण मग्गे पण्णत्ते, तं जहा – पाएहिं, ऊरुहिं, उरेणं, सिरेणं, सव्वंगेहिं ।

भावार्थ : प्रस्तुत सूत्र में मरते समय शरीर में से आत्म-प्रदेश निकलने के पांच मार्ग कहे गये है ।

1) पैर 2) उरू 3) हृदय 4) शिर 5) सर्वांग । आत्म प्रदेशों के इन मार्गों से निकलने पर उनकी जो गति होती है, वह इस प्रकार है–

1) पैरों से निकलने वाला जीव नरकगति गामी होता है ।

2) उरू यानी जंघा से निकलने वाला जीव तिर्यंचगति गामी होता है ।

3) हृदय से निकलने वाला जीव मनुष्यगति गामी होता है ।

4) शिर से निकलने वाला जीव देवगति गामी होता है ।

5) सर्वांग से निकलने वाला जीव सिद्धिगति गामी होता है ।

4

श्री समवायांग सूत्र

द्वादशांगी में चौथा अंग–**श्री समवायांग सूत्र ।** प्राकृत भाषा में इसे **'समवाओ'** के नाम से जाना जाता है । पूर्व काल में यह आगम 1,44,000 पद प्रमाण था । वर्तमान में मात्र 1667 श्लोक प्रमाण मूल ग्रंथ उपलब्ध है । इस आगम पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि उपलब्ध नहीं है । मात्र नवांगी टीकाकर पूज्य आचार्य श्री अभयदेवसूरीश्वरजी द्वारा रचित 3575 श्लोक प्रमाण बृहद्वृत्ति उपलब्ध है ।

समवाय अर्थात्–समूह । इस आगम में एक से लेकर एक कोडा-कोडी सागरोपम आदि तक के पदार्थों का समुह होने से इसे समवायांग कहते है । तृतीय अंग श्री स्थानांग सूत्र में एक से लेकर दस तक की संख्या में रहे पदार्थों का वर्णन किया गया था । जब कि इस आगम में एक से सो, फिर पचास-पचास के अंतर से 150, 200, 250... से लेकर 500 तक के पदार्थों का वर्णन है । फिर 100 के अंतर से 600 से 1000 तक के पदार्थों का वर्णन है । फिर 1000 के अंतर से 2000 से 10000 तक के पदार्थों का वर्णन है । फिर एक लाख, दो लाख, तीन लाख से दस लाख, करोड एवं एक कोडा कोडी सागरोपम की संख्या में रहे पदार्थों का वर्णन है ।

गागर में सागर के समान इस ग्रंथ के वर्तमान में उपलब्ध मात्र 1667 श्लोक प्रमाण में इतने पदार्थों का संग्रह हमें प्राप्त होता है, तो 1,44,000 पदो में रहे पदार्थों की तो कल्पना भी कैसे की जाय ?

गद्यशैली में रहे 160 सूत्र में से प्रारंभ के 135 सूत्रों में एक से लेकर सागरोपम आदि के पदार्थों का वर्णन करके शेष सूत्रो में द्वादशांगी का वर्णन है । 45 आगमों में इस आगम सूत्र एवं श्री नंदी सूत्र में द्वादशांगी का वर्णन है । प्राचीन एवं गणधर रचित होने के कारण इस आगम का महत्त्व विशेष है ।

द्वादशांगी के वर्णन के पश्चात् अनेक ज्ञानवर्धक विषयों का वर्णन है। जैसे–

• देवों का आयुष्य जितने सागरोपम होता है, उतने हजार वर्ष के बाद वे आहार लेते हैं। एवं उतने पक्ष के बाद श्वास लेते हैं।

• इस अवसर्पिणी काल में हुए 63 शलाका पुरुषों के वर्णन में 24 तीर्थंकर के विषय में बताया है कि– 24 में से 19 तीर्थंकरों ने राज्य का स्वीकार किया था, 23 तीर्थंकरों को दिन के पहले प्रहर में केवलज्ञान प्राप्त हुआ था।

• तीर्थंकरो के निर्वाण के पश्चात् उनके मुंह में रही दाढाओं को इन्द्र महाराजा ग्रहण कर लेते है। उसे सुधर्म नाम की सभा में रहे माणिक्य स्तंभ के बीच में वज्र रत्न के डिब्बे में स्थापित करते है।

• 63 शलाका पुरुषों में रहे 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रतिवासुदेव के समस्त परिवार जन, तीर्थंकरों की दीक्षा के समय शिबिकाओं के नाम, तीर्थंकरों के चैत्यवृक्ष, तीर्थंकरों के प्रथम साधु-प्रथम साध्वी आदि के नाम, 12 चक्रवर्ती के स्त्री-रत्न का नाम आदि का उल्लेख इसमें है।

• वैसे ही ऐरावत क्षेत्र में होने वाले 63 शलाका पुरुषों का भी वर्णन इसमें है।

• द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से इस आगम में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय आदि द्रव्यों का वर्णन है।

• लोक अलोक, सिद्धशिला आदि क्षेत्र का वर्णन है।

• समय, आवलिका, मुहूर्त से लेकर उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, पुद्गलपरावर्त आदि तथा चार गति के जीवों का वर्णन है।

• ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य रुप भावों का वर्णन है।

इस सूत्र में तीर्थंकर भगवान के जन्म से 4, कर्मक्षय से 11 और देवता द्वारा किये गए 19 अतिशयों का वर्णन किया है। इसी के आधार लेकर चौमासी देववंदन में आदिनाथ भगवान के स्तवन में पूज्य श्री पद्मविजयजी ने गाया है –

चार अतिशय मूलथी, ओगणीस देव ना कीध।
कर्म खप्याथी अग्यार चौत्रीस, एम अतिशया समवायांगे प्रसिद्ध ।।

''समवायांग सूत्र के हितोपदेश''

1) तओ गारवा पण्णत्ता, तं जहा-इड्ढीगारवे, रसगारवे, सायागारवे ।

भावार्थ : जिस प्रकार हवाईजहाज में सफर करने वाले हर व्यक्ति को एक विशेष सुचना होती है–`Light Travel' अर्थात् यात्रा में कम से कम सामान अपने पास रखें । अधिक सामान रखने से यात्रिक को कठिनाई होती है, तथा वाहन भी भारी बनता है । अतः `Light Travel' हितकारी है । उसी प्रकार भव भ्रमण की इस यात्रा में अपनी आत्मा जितनी हल्की रहेगी, उतनी दुःखों से मुक्त रहेगी और जितनी भारी बनी रहेगी, उतने अधिक दुःखों को सहन करना पडेगा ।

अनादि काल से अपनी आत्मा कर्मों के बंधनों से बंधी हुई है । प्रत्येक जन्म में पहले बंधे हुए कर्म उदय में आते है और नए नए कर्मों का बंध होता रहता है । नए नए कर्मों के बंधन में ऋद्धि गारव, रस गारव और शाता गारव आत्मा को अधिकाधिक भारी बनाते है । इन गारव का स्वरुप इस प्रकार हैं–

1) ऋद्धि गारव – पुण्य के योग से प्राप्त हुई शक्ति या सामग्री का निजी स्वार्थ के लिए प्रयोग करना, अथवा उसका प्रदर्शन करते हुए अभिमान करना, उसे ऋद्धि गारव कहते है । जैसे `श्रेष्ठ वस्त्र, पात्र आदि सामग्री मेरा वैभव है, मैं सभी लोगों का नायक हूँ' ऐसा मानकर गर्व करना । सामान्य से हम इसके अधीन तब बनते है, जब हमे किसी को यह बताना होता है कि, `मेरे पास कुछ है ! मैं भी शक्तिशाली हूँ' । परंतु इस गुमान में प्रायः हम वह शक्ति या सामग्री खो देते है । अपना विकास रुक जाता है । पुनर्जन्म में वह शक्ति या सामग्री दुर्लभ बन जाती है । इसके साथ ही आत्मा प्रचूर मात्रा में पाप कर्मों का बंध करती है ।

• काम विजेता श्री स्थूलभद्र महामुनि ने श्री भद्रबाहुस्वामीजी के पास 10 पूर्व का सूत्र और अर्थ से ज्ञान प्राप्त किया । एक बार जब बहन साध्वियाँ वंदन करने आयी, तब अपनी लब्धि का प्रदर्शन कर उन्होंने सिंह का रुप किया । इस एक छोटी भूल के कारण उन्हे शेष चार पूर्व का ज्ञान मात्र सूत्र से मिला, अर्थ का ज्ञान नहीं मिला । कंदर्प विजेता दर्प के आगे हार गए ।

• सातवें खंड का साम्राज्य पाने की अपनी प्रसिद्धि चाहने वाले सुभूम चक्रवर्ती लवण समुद्र में डूबकर सातवीं नरक में पहुँच गये ।

• माघ कवि ने पिता से अपने बनाए काव्य की प्रशंसा पाने के लिए कपट का आश्रय लिया। इससे उनके पिता ने उनकी गलतियाँ निकालना बंद कर दिया और उनका विकास रुक गया।

2) रस गारव – रसनेन्द्रिय के गुलाम बनकर खाने-पीने के पदार्थों की आसक्ति करना उसे रस गारव कहते है। स्वादिष्ट भोजन, मिष्ठान्न, मेवा, नमकीन पदार्थ, आम आदि फलों के रस आदि के स्वाद में हम भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक भी नहीं कर पाते है। रसना की गुलामी हमें अन्य इन्द्रियों का भी गुलाम बनाती है, जिसके परिणाम स्वरुप हमे अनेक जन्मों तक दुःखों का अनुभव करना पडता है। साधु जीवन में अन्य चार इन्द्रियों का संयम स्वतः हो जाता है, परंतु रसना पर विजय पाने के लिए विशेष प्रयत्न करना पडता है। खाने की आसक्ति से अच्छे-अच्छे तपस्वी और संयमी भी पतन के गर्त में गिर जाते है।

• 1000 वर्षों तक कठोर संयम और तप का आचरण करने वाले कंडरीक मुनि अंत में रसना के गुलाम बनकर सातवीं नरक में चले गए।

• मासक्षमण के पारणे मासक्षमण करने वाले सुव्रतमुनि सिंहकेसरिया लड्डु पाने के लिए सूर्यास्त के बाद भी भिक्षा के लिए भटकते रहे।

• भिक्षा में लड्डु पाने के लिए असाढाभूति मुनि वेष परिवर्तन करते रहे। परिणामतः वर्षों तक नर्तकी के संग में संयम हार गए।

• आचार्य मंगू रस गृद्धि के कारण नगर के बाहर गट्टर के देव बने।

3) शाता गारव – शरीर की सुखशीलता का राग करना, सुख-सुविधा के साधनों में ममत्व भाव धारण करना, उसे शाता गारव कहते है। वास्तव में शरीर और आत्मा एक नहीं बल्कि भिन्न है। फिर भी उनको एक मानकर शरीर पर होने वाले दुःख को हम अपना मान बैठते है। उसे सहन करने तैयार नहीं होते हैं। शरीर के सुखों की चाह में हम घोर कर्मों का बंध करते है।

दशवैकालिक सूत्र में कहा है– **'देह दुःखं महाफलं'** अर्थात् देह को दिया दुःख महाफलदायी है। फिर भी हमे देह की सुखशीलता त्याग कर, शरीर के कष्टों को सहन करना पसंद नहीं आता है। शाता गारव में लुब्ध बने अनेक महामुनिओं का घोर पतन हुआ है।

• उसी भव में मोक्ष प्राप्त करने वाले शैलक राजर्षि ने प्रमाद के वश होकर दैनिक आवश्यक क्रियाएँ भी छोड दी थी।

• मात्र कमर पट्टे पर रहे मोह के कारण एक आचार्य को अगले जन्म में पंगु बनना पड़ा ।

• संयम के कष्टों से उद्विग्न बने मरीचि ने त्रिदंडी वेष की रचना की और उत्सूत्र प्ररुपणा कर एक कोटा-कोटी सागरोपम काल तक का संसार बढ़ा दिया ।

• घोर तपस्या के बल पर चित्रमुनि मोक्ष के निकट पहुंच गए थे । वंदन करने आए सनत् चक्रवर्ती के स्त्री रत्न के बालों का उन्हें स्पर्श हो गया । इतने मात्र से उनकी पूरी विचारधारा बदल गई । अब मोक्ष सुख से भी चक्रवर्ती का सुख अधिक लगने लगा । किया हुआ सारा धर्म बेचकर चक्रवर्ती बनने का निदान कर बैठे । फलस्वरुप ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बने । मात्र 700 वर्ष के आयुष्य में भोगे इन्द्रियों के क्षणिक सुख भोगकर मरकर 33 सागरोपम के आयुष्य वाले नारक बने । अहो कैसी दुर्दशा !

इस प्रकार जीवन में न जाने कितने प्रसंगो में हम ऋद्धि, रस और शाता गारव के अधीन बनकर पाप कर्मों को पुष्ट करते हैं । इनसे मिलने वाला सुख तो अति अल्प है, परंतु बंधा हुआ पाप कर्म हमें अनेक जन्मों तक, चार गति रूप संसार में अपार दु:ख दायक बनता है । संक्षेप में कहे तो हम अपने ही पैरों पर कुल्हाडा मारने का कार्य करते है ।

अत: यदि आत्महित की चाहना है तो इनके स्वरुप को जानकर आत्मा के इन परम शत्रुओं पर विजय पाने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

(2) मोक्षे भवे च सर्वत्र, नि:स्पृहो मुनिसत्तम:

भावार्थ : नवांगी टीकाकार पूज्य आचार्य श्री अभयदेवसूरीश्वरजी महाराजा ने प्रस्तुत आगम ग्रंथ समवायांग सूत्र पर टीका में प्रथम सूत्र में मोक्ष के सुख का वर्णन कर इस पंक्ति का निर्देश किया है कि उत्तम महापुरुष मोक्ष और संसार दोनों के विषय में स्पृहा रहित होते है ।

स्पृहा अर्थात् इच्छा । स्पृहा को केन्द्र में रखे तो जीवों के तीन प्रकार है i) अप्रशस्त स्पृहावाले, ii) प्रशस्त स्पृहावाले iii) नि:स्पृह=स्पृह रहित ।

i) अप्रशस्त स्पृहावाले :– वे जीव होते है जो मोह के अधीन बनकर संसार के भौतिक सुखों को पाने की कामना रखते है । भौतिक सुख की चाह में उन्हें मात्र बाह्य साधनों में ही सुख का आभास होता है ।

इस कारण दिनभर की उनकी दौड़ मात्र भौतिक साधनों को पाने की होती है। पहले पैसा कमाना और फिर उन पैसों से मौज-शौक के साधन सामग्री का संग्रह करना ही उनके जीवन का लक्ष्य रहता है। ऐसे व्यक्ति कभी किसी प्रसंग पर दान-पुण्य का काम कर भी ले तो उसमें उनका लक्ष्य मात्र अपनी प्रसिद्धि और कीर्ति बढाना ही रहता है। वे धर्म की आराधना करके भी आशय अशुद्ध होने से पाप कर्म का ही बंध करते है। क्या हमारा नंबर इसमें तो नहीं है ? इस बात का आत्म निरीक्षण करना होगा।

ii) प्रशस्त स्पृहवाले :– वे जीव होते है, जो मोह पर विजय पाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। उनके मन भौतिक सुखों की प्रधानता नहीं होती, बल्कि वे भौतिक सुखों का त्याग कर आत्मिक सुख पाना चाहते है। आत्मिक सुखों की प्राप्ति धर्म के बिना नहीं है और धर्म की सामग्री पुण्यानुबंधी पुण्य से प्राप्त होती है। अतः प्रशस्त इच्छा वाला जीव धर्म की सामग्री और धर्म के अवसर की राह देखता हैं। संसार के सारे संबंध उन्हें Jail जैसे लगते है। ऐसे जीव को संसार की Jail से छुटने की तीव्र इच्छा होती है। जब तक संसार से न छूट सके, तब तक अपनी शक्ति अनुसार शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करते रहते हैं। स्वयं के आत्म कल्याण की इच्छा के साथ कुछ विरल आत्माएँ ऐसी भी होती है, जिनके अन्तर्मन में जगत् के सभी जीवों के आत्म कल्याण करने की शुभ भावना पैदा होती है। इस भावना के आधार पर ही आत्मा तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करती है।

iii) स्पृहा रहित :– वे जीव होते है, जिन्होंने धर्म की सामग्री प्राप्त कर उसे आत्मसात् की हो। आत्मिक साधना के प्रकर्ष को पाये हुए ऐसे जीव परम समता भाव को प्राप्त होते है। वे संसार के सभी प्रकार के द्वंदो में सम चित्त रहते है। चाहे सुख हो या दुःख हो, अनुकलता हो यो प्रतिकूलता हो, उन सभी में वे विरक्त होते हैं। एक ओर शरीर के भाग को कोई शस्त्र से छेद करे और दूसरी ओर कोई गोशीर्ष-चन्दन से विलेपन करे तब भी दोनों के प्रति समचित्त रहना, किसी के प्रति राग या द्वेष नहीं करना, इस परमोच्च साधना को प्राप्त हुए महात्मा के मन में संसार और मोक्ष के प्रति भी समभाव होता है। आत्मिक साधना में लीन बनकर वे मानव देह में ही मोक्ष के सुखों का आस्वाद करते है। इस अवस्था को प्राप्त करना अति कठिन है। फिर भी हर साधक के अन्तर्मन में इस अवस्था का लक्ष्य जरुर होना चाहिए।

परम श्रावक श्री कुमारपाल महाराजा के द्वारा रचित आत्मनिंदा द्वात्रिंशिका के नौवें श्लोक में इसी भाव को पाने की प्रार्थना की है । गुजराती में रचित इस श्लोक का भावानुवाद इस प्रकार है–

क्यारे प्रभो ! संसार कारण सर्व ममता छोडीने,
आज्ञा प्रमाणे आपनी, मन तत्त्वज्ञाने जोडीने,
रमीश आत्म विषे विभो ! निरपेक्ष वृत्ति थइ सदा,
त्यजीश इच्छा मुक्तिनी पण संत थई ने हुँ कदा ?

परमात्मा के पास इस स्तुति के माध्यम से हम भी इस परमोच्च भाव को पाने की साधना में प्रयत्नशील बने ।

(3) दुविहे बंधणे पन्नत्ते – तं जहा रागबंधणे चेव, दोसबंधणे चेव ।

भावार्थ : सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा ने दो प्रकार के बंधन बताए है–राग बंधन और द्वेष बंधन । राग और द्वेष ये दो आत्मा के परम शत्रु है । इन दोनों के वश हुई आत्मा पाप कर्मों का बंध करती है ।

उपमिति भव प्रपंच कथा में राग और द्वेष को मोहराजा को दो पुत्रों के रुप में बताया है । अपनी आत्मा पर मोहराजा का साम्राज्य सदा बना रहे इसलिए उसने सबसे बडी जिम्मेदारी अपने मुख्य पुत्र-राग-द्वेष को सौंपी है । क्रोध, मान, माया और लोभ तथा पांच इन्द्रिय के विषय-भोग की कुवासना इन राग और द्वेष का ही परिवार है । इनमें राग को केशरीसिंह कहा है और द्वेष को गजेन्द्र अर्थात् हाथी कहा है । वैसे तो सिंह और हाथी एक-दूसरे के कट्टर दुश्मन है, फिर भी आत्मिक पतन कराने में ये दोनों एक दूसरे के परम सहायक है । प्रतिपल इन दोनों में से कोई एक हमारी आत्मा पर अपना प्रभाव बनाए रखते है । जब तक वीतरागता प्राप्त न हो, तब तक ये दोनों ही आत्मा के पडछाए बने रहते है । इनपर विजय पाना तो दूर, इनको सच्चे स्वरुप में जानना भी अति कठिन है ।

कुत्ते दो प्रकार के होते है, एक छिपकर सीधा काटता है, दूसरा भौंक कर फिर कांटता है । भौंककर काटनेवाले कुत्ते से सावधान रहा जा सकता है, परंतु छिपकर कांटनेवाले कुत्ते से बचना मुश्किल होता है । वैसे ही राग-छिपकर काटनेवाले कुत्ते जैसा है और द्वेष-भौंककर काटने वाले कुत्ते जैसा है ।

जब कोई व्यक्ति ज्यादा गुस्सा करता हो, कलह-क्लेश करता हो, तब उसके व्यवहार को दुनिया पसंद नहीं करती है । परंतु कोई व्यक्ति सभी को प्रेम करता हो, सभी जगह हँसी-मजाक करता हो, किसी की मजाक उडाकर हंसी पैदा करता हो, उसे हर कोई पसंद करता है । कलह-क्लेश आदि करना द्वेष का प्रकार है तो प्रेम करना हँसी-मजाक करना राग का प्रकार है । वास्तव में वे दोनों ही आत्मा के परम शत्रु है ।

आत्मा का स्वभाव न तो राग करना है, न ही द्वेष करना है । फिर भी घाति कर्म में सबसे बलवान मोहनीय कर्म हमें प्रतिपल राग-द्वेष के बंधनों में जकडे रखता है । किसी भी व्यक्ति या वस्तु को पाने की इच्छा, प्राप्त हुई वस्तु में मुर्च्छा, पाँच-इन्द्रिय के विषय भोग, स्नेह, गृद्धि, ममत्व, परितोष एवं अभिलाषा आदि राग के ही पर्याय है । प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ये सभी भाव रहते है ।

जन्म होने पर गर्भ में सबसे पहले आत्मा शरीर का निर्माण करती है तब से शरीर का, फिर माता-पिता, भाई, बहन, दोस्त, रिश्तेदार आदि से संबंध जुड़ते है । जैसे जैसे उम्र बढती है, वैसे वैसे व्यक्ति के ममत्व का वर्तूल बड़ा बनता है । पुराने संबंध छुटते जाते है, नये संबंध बढते जाते है । पहले झूला फिर खिलौना, फिर दोस्त, फिर पत्नी, पुत्र, घर, गाड़ी, दुकान-मकान आदि में 'ये मेरे है' इनकी चिंता में मन लगा रहता है, परंतु वास्तव में इन सभी ने कभी ऐसा नहीं माना कि 'ये मेरा है' । घर-गाड़ी, दुकान-मकान, धन दौलत को हम अपना मानते है, उनके चले जाने पर शोक करते है, परंतु कभी ऐसा हुआ नहीं और होगा भी नहीं कि, उनसे हमारा वियोग होने पर उन्हें शोक हुआ हो । ये तो जड पदार्थ है, उनमें संवेदन की शक्ति ही नहीं है । इसलिए मात्र एकपक्षीय ममत्व धारण करना, यह अपनी मूर्खता है ।

जड़ पदार्थों से अतिरिक्त जो जीव पदार्थ है–जैसे पत्नी, पुत्र, रिश्तेदार आदि वे भी मात्र स्वार्थ के ही सगे है । स्वार्थ होने पर गधे को बाप बनाने वाले, स्वार्थ पूरा होने पर बाप को भी गधा बना लेते है । फिर भी इन पर से राग भाव कम नहीं होता । अनादि काल से आत्मा में सुख पाने की इच्छा होने के कारण जहाँ-जहाँ, थोडा भी सुख मिलता है, वहाँ आत्मा राग के बंधनों में बंध जाती है । लोहे की जंजीरों से भी नहीं बंधने वाला यह मन, प्रेम के कच्चे धागे से जीवन भर बंधा रहता है ।

जहाँ राग होगा वहाँ उसके विपरीत व्यक्ति, पदार्थ या परिस्थिति के प्रति द्वेष हुए बिना नहीं रहेगा । मिठाई खाते हमारा मुंह प्रसन्नता से भर जाता है, तो नीम के कडवें पत्तें खाते मुंह विकृत बने बिना नहीं रहेगा । यह सिद्ध करता है कि मीठे स्वाद में राग है, तो कडवे स्वाद में द्वेष है ।

जैसे राग के अनेक पर्याय हैं, वैसे द्वेष के भी अनेक पर्याय हैं । किसी के उत्कर्ष को देख ईर्ष्या करना, इच्छित कार्य संपन्न न होने पर रोष करना, अनिच्छित पर द्वेष करना, किसी की निंदा करना, किसी की गलती माफ नहीं करना, बल्कि बदला लेने की भावना से वैर की परंपरा चलाना, मत्सर, असूया आदि द्वेष के पर्याय है ।

जीवन में किसी भी क्षेत्र में सफलता मिलने पर राग-भाव बढ़ता है और असफलता मिलने पर द्वेष भाव बढ़ता है । इसी आँख-मिचौनी के खेल में हम आत्म-साधना के लिए मिला मानव जन्म हार जाते है और जब जीवन की अंतिम घडियाँ आती है, तब तन-मन की शक्तियाँ क्षीण होने से मात्र पश्चात्ताप का दुःख शेष रहता है । जब शरीर में भयंकर बीमारियाँ आती है तब असह्य पीड़ा के समय कदाचित् सारे स्वजन पास में खडे हो तो उनमें से कोई भी अपनी पीड़ा लेने या कम करने वाला नहीं होता है । दो-चार दिन अस्पताल के चक्कर लगाने के बाद, अपने ही स्वजन अपनी मृत्यु की राह देखते है । मृत्यु हो जाने के बाद तो जैसे कुछ अपना था ही नहीं– इस तरह बांधकर श्मशान में जला देते है । दो चार दिन शोक मनाकर, फिर सब कुछ भूल कर अपनी जिंदगी में मस्त बन जाते है । इन्हीं भावों को प्रकट करने किसी गुजराती कवि ने लिखा है–

मरनारनी चिता पर चाहनार कोई चढतो नथी,
कहे छे पाछळ मरीश, पण पाछळ कोई मरतो नथी,
देह ने बळतो जोइ ने आगमां कोई पडतो नथी,
अरे ! आग मां तो शुं पडे ? एनी राख ने पण कोई अडतो नथी !

जीवन के इन राग-द्वेष के बंधनों से मुक्त होने के लिए परमात्मा ने वैराग्य का मार्ग बताया है । इसी मार्ग पर चलकर भूतकाल में अनंत आत्माएँ वीतराग दशा को प्राप्त हुई है । अतः यदि आत्मा के सच्चे सुख की चाह हो तो हमें भी इसी मार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

5

श्री भगवती सूत्र

द्वादशांगी में पांचवाँ अंग **श्री भगवती सूत्र** है जिसका दूसरा नाम **व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र** है । प्राकृत में इसे **`भगवई'** अथवा **`विवाह पन्नत्ती'** नाम से जाना जाता है । पूर्व काल में यह ग्रंथ 2,88,000 पद प्रमाण था । वर्तमान में, सभी आगम ग्रंथों में सबसे अधिक **15,571 श्लोक** प्रमाण मूल सूत्र विद्यमान है, जिसपर नवांगी टीकाकार **पूज्य आचार्य श्री अभयदेवसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा रचित 18,616 श्लोक प्रमाण टीका, 3114 श्लोक प्रमाण **चूर्णि,** 2800 श्लोक प्रमाण **अवचूर्णि,** पूज्य आचार्य श्री मलयगिरिजी रचित 3750 श्लोक प्रमाण `द्वितीय शतक वृत्ति', **पूज्य आचार्य श्री दानशेखरसूरिजी महाराजा** रचित 12920 श्लोक प्रमाण **लघुवृत्ति,** पूज्य हर्षकुलगणिजी रचित 490 श्लोक प्रमाण **`बीजक'** –ऐसे मुल श्लोक, टीका आदि मिलाकर 57,442 श्लोक प्रमाण साहित्य वर्तमान में प्राप्त होता है ।

चार ज्ञान के धारक, प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी भगवान ने हम जैसे अज्ञानी जीवों की शंका के समाधान के लिए प्रभु वीर को 36,000 प्रश्न पूछे । उन प्रश्नों के उत्तर स्वयं परमात्मा महावीर स्वामी ने स्वमुख से प्रकाशित किये । उन 36000 प्रश्नों का संग्रह इस व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र में किया गया है ।

महामंत्रीश्वर श्री पेथडशा ने इस आगम के श्रवण में 36000 सुवर्ण मुद्रा द्वारा आगम पूजन किया था ।

प्रश्नोत्तर शैली के इस महान ग्रंथ में **`भंते** और **गोयमा'** के संबोधन वाला भगवान महावीर और गौतम स्वामी का संवाद है । इससे अतिरिक्त गणधर श्री अग्निभूतिजी, गणधर श्री वायुभूतिजी, `रोह अणगार' `मार्कंदिकपुत्र' नाम के साधु, एवं प्रभु पार्श्वनाथ के शासन में चार महाव्रत के धारक साधुओं की शंकाओं का, भगवान महावीर के द्वारा समाधान दिया गया है । एवं समवसरण में बैठे श्रावक-श्राविकाओं के पूछे प्रश्नों के भी उत्तर प्रभु ने दिये है ।

इसमें जमाली, गोशालक, चमरेन्द्र, शिवराजर्षि, परिव्राजक तापस, स्कंद, तामली, पूरण, पुद्गल आदि तापसों का वर्णन है, तो कार्तिक शेठ, माकंदी अणगार, मद्रूक श्रावक की चर्चा भी है ।

इस सूत्र में नवपद सम्बंधी व्याख्यान है । वे नवपद अरिहंतादि नवपदों से भिन्न इस प्रकार हैं–1) स्व समय (स्वशास्त्र) 2) पर समय (परशास्त्र) 3) स्व-पर समय (स्व-पर के शास्त्र) 4) जीव, 5) अजीव, 6) जीवाजीव, 7) लोक, 8) अलोक, 9) लोकालोक ।

भगवान महावीर स्वामी ने दिये 36,000 प्रश्नों के 1) द्रव्य, 2) गुण, 3) क्षेत्र, 4) काल, 5) पर्याय, 6) प्रदेश, 7) परिणाम, 8) अवस्था, 9) यथास्थित भाव, 10) अनुगम, 11) निक्षेप, 12) नय, 13) प्रमाण, 14) सुनिपुण उपक्रम आदि विविध प्रकारों से उत्तर दिये है ।

इस आगम के प्रारंभ में नमस्कार महामंत्र के पांच पदों से मंगल किया है । फिर ब्राह्मी लिपि एवं श्रुतदेवता को नमस्कार करके श्री इन्द्रभूति गौतमस्वामीजी का सुन्दर परिचय दिया है ।

इस सूत्र में चारो अनुयोग का समावेश होने पर भी मुख्यतः द्रव्यानुयोग की प्रधानता है । इस आगम में एक ही श्रुतस्कंध है । यहाँ अध्ययन के बदले शतक शब्द का प्रयोग है । मुख्य रुप से 41 शतक, जिसमें 138 लघु शतक और 1923 उद्देशा है ।

मात्र जैन दर्शन ही नहीं बल्कि अन्य सभी दर्शनों के मूल तत्त्वों का वर्णन इस ग्रंथ रत्न में किया है । भूगोल-अंतरिक्ष विज्ञान, इसलोक-परलोक, स्वर्ग-नरक, जीवविचार, रसायण शास्त्र, गर्भ शास्त्र, स्वप्न शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, गणित शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, मनोविज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अध्यात्म विज्ञान, इतिहास आदि अनेक विषयों रुपी जलचर प्राणी से भरा यह ज्ञान का महासागर है ।

41 शतकों में वर्णन किये पदार्थ इस प्रकार है ।

1) पहला शतक – इसमें पृथ्वीकाय आदि जीवों की स्थिति, कर्म सिद्धांत, पार्श्वनाथ भगवान की परंपरा में हुए कालास्यवेषि पुत्र साधु के जीवन चरित्र में साधुओं के गुणों का वर्णन किया है ।

2) दूसरा शतक – इसमें श्री स्कंदक परिव्राजक की शंका के समाधान एवं दसवें उद्देशे में पंचास्तिकाय का स्वरुप बताया है ।

3) तीसरा शतक – इसमें गणधर अग्निभूति और वायुभूति की शंकाओं का समाधान तथा तामली तापस का जीवन चरित्र बताया है ।

4) चौथा शतक – इसमें छह लेश्या का वर्णन है तथा ईशान देवलोक के चार लोकपाल के विमानों का वर्णन है ।

5) पांचवाँ शतक – इसमें सूर्य की गति के आधार पर दिन-रात के प्रमाण तथा बालमुनि अतिमुक्तक का जीवन चरित्र है ।

6) छठा शतक – इसमें संसारी जीवों को संसार में बांधे रखने वाले आठ कर्मों का वर्णन है ।

7) सातवाँ शतक – इसमें अन्यतीर्थिक कालोदयी के साथ पंचास्तिकाय के विषय की चर्चा है ।

8) आठवाँ शतक – इसमें मिथ्यावाद का निराकरण और स्याद्वाद मत की स्थापना है ।

9) नौवाँ शतक – इसमें जंबूद्वीप का वर्णन है, साथ ही गांगेय ऋषि के प्रश्नोत्तर है ।

10 से 20) – दसवें शतक से बीसवें शतक में जीव और कर्म का संबंध, शिवराजर्षि का जीवन चरित्र, सुदर्शन श्रेष्ठी की साधना, शंख श्रावक की कथा, जयंती श्राविका के प्रश्न, सात नरक का वर्णन, उदायन राजा का जीवन चरित्र, अंबड परिव्राजक का जीवन चरित्र, गोशालक का जीवन चरित्र, साधु जीवन की महिमा, शक्रेन्द्र के प्रश्न, कोणिक राजा के उदायी और भूतानंद हाथी की भावी गति, कार्तिक शेठ की शकेन्द्र के रुप में उत्पत्ति, देवों की लेश्या आदि अनेक पदार्थों का वर्णन है ।

अंतिम 21 से 41 – तक के शतकों में वनस्पति काय, 24 दंडक, कर्मसिद्धांत, मिथ्यामतों की मान्यताएँ, जीवों के जन्म-मरण एवं कर्मबंध के कारण, आत्मा, पुण्य-पाप, परलोक, मोक्ष आदि विषयों के संबंधी शंकाओं का समाधान दिया है ।

इन शंका-समाधानों में विशेष जानने योग्य जयंति श्राविका का प्रश्न है कि–``जीव का सोना अच्छा या जगना ?'' तब प्रभु वीर ने कहा **``पापी आत्मा का सोना अच्छा और धर्मी आत्मा का जगना अच्छा**

है ।'' ऐसे अनेक आत्म जागृति के संदेशों को देने वाले अतिशय महिमावंत इस सूत्र को भगवती सूत्र कहते है ।

वर्तमान में उपलब्ध ग्यारह अंग आगम शास्त्रों में यह आगम सबसे बड़ा है । साधु जीवन में इस सूत्र हेतु जो योगोद्वहन किये जाते है, वे सबसे बड़े है । छह महिने तक चलने वाले इसके योगोद्वहन में 77 कालग्रहण की क्रिया की जाती है । इसके योगोद्वहन के पश्चात् ही साधु को `गणि' पदवी दी जाती है । जिन्हें `गणि' पदवी दी जाती है, उन्हें जैन शासन के महत्त्वपूर्ण अधिकार दिये जाते है–जैसे कि वे श्री भगवती सूत्र के पठन-पाठन की क्रिया कर सकते है । वे नूतन दीक्षित मुनिवर को बड़ी दीक्षा प्रदान कर सकते है । उन्हें गणिविद्या के यंत्र रखने की एवं उसके जाप करने का अधिकार मिलता है । `गणि' पदवी के धारक मुनि को वंदन करते समय इच्छकार के बाद एक खमासमण अधिक दिया जाता है तथा उनके नाम के आगे `गणि' शब्द का प्रयोग होता है ।

''भगवती सूत्र के हितोपदेश''

(1) तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेदितं ।

भावार्थ – मोक्ष मार्ग की सभी आराधनाएँ, चाहे वह नवकारशी हो, या छह महिने के उपवास हो, श्रावक जीवन के बारह व्रत हो या साधु जीवन में पांच महाव्रत हो, सभी का मूल समकित है । समकित के अस्तित्व में एक नवकारशी जितना तप भी मोक्ष दे सकता है और समकित के अभाव में वर्षों की तपश्चर्या भी मोक्ष नहीं दे सकती है । समकित के अस्तित्व में अष्ट प्रवचन माता के ज्ञाता भी ज्ञानी है और समकित के अभाव में साढ़े नौ पूर्व के ज्ञाता भी अज्ञानी है । इससे स्पष्ट होता है कि– **समकित ही सभी धर्म आराधनाओं का मूल है ।**

समकित यानी जिनेश्वर परमात्मा के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा । किसी भी व्यक्ति के वचनों पर श्रद्धा तभी हो सकती है, जब उसके वचनों में असत्य नहीं हैं, ऐसा विश्वास हो !

असत्य बोलने में मुख्य दो कारण है । पहला कारण है–व्यक्ति का अज्ञान । अज्ञान के कारण जब व्यक्ति किसी भी पदार्थ के पूर्ण सत्य को नहीं जानता हो, तब उसके वचनों में असत्य की शक्यता होती है ।

दूसरा कारण है–व्यक्ति का पक्षपात । जब तक आत्मा में राग-द्वेष रहे हो, तब तक व्यक्ति को किसी का पक्षपात जरुर होता है । **जहाँ राग होता है, वहाँ दोष नहीं दिखते है और जहाँ द्वेष होता है, वहाँ गुण नहीं दिखते है ।** ऐसी स्थिति में व्यक्ति, रागी का बचाव और द्वेषी का अहित करने के लिए असत्य का आश्रय लेता है ।

घाति कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त करने वाले जिनेश्वर परमात्मा इन दोनों दोषों से मुक्त होते है । दीक्षा लेने के बाद जब तक तीर्थंकर परमात्मा को केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है, तब तक वे सर्वथा मौन रहते है । आत्मसाधना के बल पर जब उन्हें वीतरागता और सर्वज्ञता गुणों की प्राप्ति होती है, तभी वे धर्म का उपदेश देते है । अतः सर्वज्ञता के कारण उनमें अज्ञान दोष और वीतरागता के कारण उनमें पक्षपात दोष नहीं रहता । इससे सिद्ध होता है कि जो जिनेश्वर परमात्मा ने कहा है, वही सत्य है ।

शंका आदि पांच दोषों का त्याग करके जो आत्मा जिनेश्वर परमात्मा के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा करती है, वह आत्मा समकित रत्न को प्राप्त करके आत्मा के विकास में उत्तरोत्तर आगे बढ़ती है ।

(2) नेरइया दसविहं वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।
तं जहा-सीतं-उसिणं-खुहं-पिवासं-कंडु-परज्झं-जरं-दाहं-भयं-सोगं ।।

भावार्थ :– नरक के जीव जन्म से मरण तक प्रतिसमय मरणांत कष्टों को सहन करते है । जघन्य से 10,000 वर्ष और उत्कृष्ट से 33 सागरोपम के अपने आयुष्य काल में नरक के जीव प्रतिपल मरण की इच्छा करते है । परंतु शरीर के टुकडे-टुकडे होने पर भी जब तक आयुष्य पूरा नहीं होता तब तक उनकी मृत्यु नहीं होती ।

मुख्यतया नरक के जीवों को तीन प्रकार की वेदना होती है ।

1) परमाधामी कृत वेदना – जिनको नरक के जीवों को पीड़ा देने में ही मजा आती है, ऐसे 15 प्रकार के परमाधामी देवता, हमेशा नरक के जीवों की घोर कदर्थना करते रहते है ।

2) परस्पर कृत वेदना – नरक में रही सभी मिथ्यादृष्टि आत्माओं को विभंग ज्ञान होता है । अपने विभंग ज्ञान से पूर्व भव के शत्रु को जानकर वे परस्पर लड़ते-झगडते ही रहते है ।

3) क्षेत्र कृत वेदना – 7 प्रकार की नरकों में ज्यों ज्यों नीचे जाते है त्यों त्यों चारों ओर अत्यंत ही गाढ़ अंधकार होता है । वहाँ की भूमि श्लेष्म, मल-मूत्र, खून, मांस, चर्बी आदि स्वाभाविक अशुभ पदार्थों से अत्यंत व्याप्त होती है । वास्तव में नरक में श्लेष्म आदि अशुभ पदार्थों का ढ़ेर तो नहीं होता परंतु वहां की गंदगी को समझने के लिए इनकी उपमा दी गई है ।

मनुष्य लोक के सभी मनुष्यों की शारीरिक पीड़ाओं को इकट्ठी करके उसे अनंत बार गुणा करे तो भी नरक के दुःख की तुलना नहीं हो सकती है । नरक के जीवों को हमेशा 10 प्रकार की वेदनाओं को सहन करना पड़ता है । वे दस प्रकार की वेदना इस प्रकार है–

1) शीत वेदना – पोष महिने की भयंकर ठंडी में, हिमालय के पर्वत पर जब बर्फ गिर रहा हो, तीव्र गति से हवा चल रही हो, ऐसे ठंडे वातावरण में जिसका पूरा शरीर ठंडी से काँप रहा हो, ऐसे किसी कमजोर व्यक्ति को खूले बदन रखा जाय, तब उसे जिस शीत-वेदना का अनुभव होता है, उससे अनंत गुणी शीत वेदना नरक में होती है । नरक में शीत वेदना का अनुभव करते हुए किसी नारक को यदि नरक में से उठाकर पोष मास में बर्फ गिरते हुए हिमालय पर्वत पर खुले बदन सुला दिया जाय तब राहत का अनुभव करते हुए उसे तत्काल नींद आ जाय । इससे अनुमान कर सकते है कि नरक में कितनी भयंकर शीत वेदना होती होगी ।

2) उष्ण वेदना –ज्येष्ठ मास के गर्मी के दिनों में रेगिस्तान की मरूभूमि में चारों ओर गर्म हवाएं चल रही हो, खुले आकाश से मध्याह्न का सूर्य आग बरसा रहा हो, चारों ओर अग्नि जल रही हो, ऐसी स्थिति में पित्त के रोगी को जो उष्ण वेदना होती है, उससे अनंत गुणी उष्ण वेदना नरक में होती है । नरक में उष्ण वेदना को सहन करते किसी नारक को नरक भूमि से उठाकर टाटा की सुलगती हुई भट्टी के पास भयंकर गर्मी के दिनों में रखा जाय, तब राहत का अनुभव करते हुए वह आराम से सो जायेगा । इससे अनुमान कर सकते है कि नरक में कितनी भयंकर गर्मी होती होगी ।

3) क्षुधा वेदना – चाहे नरक का जीव पहली नरक के जघन्य

आयुष्य 10,000 वर्ष वाला हो या सातवीं नरक के उत्कृष्ट 33 सागरोपम के आयुष्य वाला हो, उन्हें भोजन हेतु एक दाना भी नसीब में नहीं होता। मनुष्य लोक का सारा भोजन नरक का जीव खा ले तो भी उसकी क्षुधा शांत नहीं हो सकती है।

4) तृषा वेदना – मनुष्य लोक के सभी समुद्र, कुए, तालाब, नदी आदि के पानी को एक नरक का जीव पी ले तो भी उसकी प्यास शांत नहीं हो सकती। मानो कि नरक के जीवों को जिंदगी भर चोविहार उपवास करने पड़ते हो, फिर भी उन जीवों को कोई विशेष कर्मों की निर्जरा नहीं होती है।

5) खुजली की पीड़ा – नरक के जीवों का शरीर वैक्रिय वर्गणा के अशुभ पुद्गलों से बना होता है। उसमें भी अशुभ कर्मोदय के कारण जैसी खुजली की पीड़ा होती है, उसे यदि तीक्ष्ण छुरी आदि से भी खुजलाया जाय तो भी वह शांत नहीं होती है।

6) पराधीनता – चार नरक के जीवों को सतत परमाधामी की पराधीनता है। पांचवी नरक से नीचे परमाधामी नहीं होते है, फिर भी जब तक उनका आयुष्य पूरा न हो तब तक उन्हें आजीवन कारावास की सजा के समान वहीं रहना पडता है।

7) ज्वर – मनुष्य को होने वाले मलेरिया, डेंग्यु, कोरोना आदि के बुखार से भी अनंत गुणे बुखार की वेदना नारकों को जीवन पर्यंत होती है। इससे अतिरिक्त छठी और सातवीं नरक के जीवों को 5 करोड, 68 लाख, 99 हजार, 584 प्रकार के रोग होते हैं।

8) दाह – नरक के जीवों के शरीर में हमेशा दाह की पीड़ा रहती है। उनका शरीर हमेशा आग की तरह तपता रहता है।

9) भय – नरक के जीव हमेशा भयभीत रहते हैं। उनके जीवन में भय संज्ञा की बहुलता होती है। विभंग ज्ञान से वे जीव अपनी आगामी वेदना को जानकर हमेशा भयभीत रहते हैं।

10) शोक – विभंग ज्ञान से अपने गत जन्म की गलतियाँ को जानकर नरक के जीव हमेशा शोकातुर रहते है।

इस प्रकार के पारावार दुःखों को नरक के जीव प्रतिपल सहन करते है। भूतकाल में अनंती बार हमारी आत्मा ने भी नरक के दुःख

सहन किये है और जब तक मोक्ष नहीं होगा, तब तक पाप कर्मों के आचरण से न जाने कितनी बार नरक में जाना पडेगा ? वर्तमान के पापमय जीवन को आखों के सामने लाकर हमें निरीक्षण करना होगा कि–क्या नरक की इस भयंकर सजा के लिए हम तैयार है ?

(3) जीवे णं भंते ! गब्भगते सामणे नेरइएसु / देवलोगेसु उववज्जेज्जा ?
गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ।

भावार्थ – भव्य जीवों के प्रतिबोध के लिए लब्धिनिधान श्री गौतम स्वामीजी, भगवान महावीर स्वामी को प्रश्न करते है कि–हे भगवंत ! क्या गर्भ में रहा जीव मरकर नरक में अथवा देवलोक में उत्पन्न होता है ? तब भगवान कहते है कि–हे गौतम ! गर्भ में रही आत्मा कदाचित् मरकर नरक में अथवा देवलोक में उत्पन्न होती भी है और कदाचित् नहीं भी होती है ।

इस कथन का तात्पर्य है कि गर्भ में रहा जीव मृत्यु होने पर नरक में भी पैदा हो सकता है और देवलोक में भी । गर्भ में रहे जीव पर सबसे अधिक प्रभाव उसकी माता का पडता है । माता के आचरण और विचारों से गर्भ में रहे जीव पर संस्कारों का सिंचन होता है । गर्भ में मात्र शरीर का ही नहीं, बल्कि मन का भी निर्माण होता है । अतः गर्भ में रहे जीव को सुसंस्कारित बनाने के लिए माता को सुसंस्कारित होना अत्यंत जरुरी है ।

यदि गर्भ में रहा जीव अति पुण्यशाली या अति पापी है, तो गर्भ के कारण माता के संस्कारों में परिवर्तन आता है । जैसे तीर्थंकर के गर्भ में आने पर उनकी माता का जीवन भी पवित्र बन जाता है । तीर्थंकर की माता को अहिंसा की उद्घोषणा आदि के दोहद पैदा होते है । एवं कोणिक, रावण आदि के गर्भ में आने पर उनकी माता को भी अशुभ दोहद उत्पन्न होते है । सामान्यतया तो माता के आधार पर ही गर्भ में रहे जीव पर अच्छी या बूरी असर होती है ।

आर्य संस्कृति में भी माता को हितशिक्षा देते हुए कहा है–

'जननी जण तू भक्त जण का दाता का शूर,
नहीं तो रहजे वांझणी, मत गमावीश नूर'

गर्भ गत जीव को संस्कारों का सिंचन करने के लिए माता को

अनेक प्रेरणाएं दी गई है । जैसे शिवाजी के गर्भ में आने पर माँ जीजाबाई को रामायण के पारायण की प्रेरणा दी गई । माता की प्रत्येक प्रवृत्ति का गर्भ पर खूब असर होता है ।

किस प्रकार का जीव नरक में जाता है उसके उदाहरण में कहा है कि–एक बार एक राजा की रानी के गर्भ में वैक्रिय लब्धि धारक पुत्र का अवतरण हुआ । कालक्रम से गर्भ की वृद्धि हुई । तब अचानक उस नगर पर दुश्मनों का आक्रमण हुआ । गर्भ में रहे जीव ने दुश्मनों के आक्रमण को जाना तब उसने अपनी वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर सैन्य की रचना की और युद्ध करके दुश्मनों को हरा दिया । तब अति रौद्र ध्यान में आयुष्य पूर्ण कर वह मरकर नरक में चला गया ।

वैसे ही किस प्रकार का जीव देवलोक में जाता है, तब कहते है कि गर्भ में रहा जीव धर्म ध्यान में प्रवृत्त रहता हो, तब यदि वह जीव गर्भ में ही अपना आयुष्य पूर्ण करे तो वह देवलोक में चला जाता है ।

अतः गर्भ में रहे जीव के आत्म विकास के लिए माता को हमेशा सावधान रहना चाहिए ।

(4) जल्लेसे मरइ जीवे, तल्लेसे चेव उववज्जइ ।

भावार्थ :– संसार में जिसका जन्म है उसका मरण निश्चित है । परंतु मरण के बाद आत्मा का पुनर्जन्म कौन-सी गति में होता है वह महत्त्वपूर्ण है । इसलिए प्रस्तुतः में कहा है–आत्मा जिस लेश्या में मरती है, उसी लेश्या में पैदा होती है ।

जैसे किसी सूटकेस में जिस कपडे को सबसे अंत में रखा जाता है, खोलते समय वह कपडा सबसे पहले बाहर निकलता है । वैसे ही मरण के समय जो लेश्या हो, उसकी महत्ता वाली गति में आत्मा का अगला जन्म होता है ।

वर्ष भर अच्छी पढ़ाई करने वाला विद्यार्थी, अपनी वार्षिक परीक्षा में बीमार हो जाय, अथवा किसी कारण परीक्षा न दे तो उसका पूरा वर्ष व्यर्थ जाता है । वैसे ही जीवन में चाहे कितनी भी सुंदर आराधना साधना की हो, उसकी सार्थकता समाधि मरण के आधार पर है । यदि मरण के समय समाधि भाव नहीं रहता तो देवों को भी दुर्लभ ऐसे मनुष्य जन्म की प्राप्ति भी व्यर्थ हो जाती है । इसलिए ज्ञानियों ने कहा है–

''मरणं मंगलं यस्य, सफलं जीवनं तस्य'

अर्थात् – जिसका मरण मंगल है उसका जीवन भी सफल है ।

यह जानकर आश्चर्य होगा कि जीवनभर मात्र पापाचरण करनेवाले भी अपने जीवन की अंतिम पलों को समाधि मरण से सफल बनाकर कई पुण्यात्माएँ मोक्ष में चली गई तो कई पुण्यात्माएँ देवलोक के दिव्य सुखों में निर्लेप रहकर अल्प भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेगी । इससे विपरीत, जीवन भर धर्म की आराधना करने पर भी मरण समय में राग-द्वेष से विचलित बनकर कई आत्माएँ दुर्गति के गर्त में चली गई है । कहा जाता है कि चौदह पूर्व जितने विशाल श्रुतज्ञान के ज्ञाता भी अंतिम समय में प्रमाद के वश होकर निगोद में चले जाते है । इसलिए अपने मरण को सुधारने के लिए वे भी निर्यामक का आश्रय लेते है ।

निर्यामक यानी मरण के समय आत्मा को धर्म मार्ग में स्थिर करने वाले । मरण के समय जब पूरे शरीर में से आत्मा बाहर निकलती है, तब शरीर में अत्यंत वेदना होती है । ज्ञानियों का वचन है कि आग में तपाई हुई लालबनी करोडों सुइयों को एक साथ हमारे शरीर में भोंकी जाय, तब जितनी वेदना होती है, उससे अनंत गुणी वेदना मरण समय होती है । इस स्थिति में आत्म-जागृति रहना अति कठिन है । यदि पास में कोई निर्यामक हो तो वह हमे आत्म-जागृति के संदेश से जागृत रख सकता है ।

मरण के समय निर्यामक कितना महत्त्वपूर्ण है इसे समझने के लिए संक्षेप में श्री कृष्ण महाराजा और महासति मदनरेखा के पति युगबाहु का दृष्टांत है –

द्वारिका नगरी जलने के बाद श्री कृष्ण वासुदेव और बलराम जंगलों में भटक रहे थे । एक दिन भूख लगने पर बलराम नगर में गए हुए थे, तब श्री कृष्ण सिंहचर्म को ओढ़कर वृक्ष के नीचे सो रहे थे । तब, भाई की हत्या के पाप से बचने जराकुमार-जो बारह वर्ष से जंगल में था, उसने सोये हुए कृष्ण को पशु समझकर उसपर जहरीला बाण छोड़ा । बाण लगते ही श्री कृष्ण ने जब अपने भाई जराकुमार को देखा तब उन्हें भगवान नेमीनाथ के वचन याद आये । जराकुमार को माफ करके उसे

भागने को कहा और स्वयं शुभ ध्यान में लीन बनने का प्रयत्न करने लगे। परंतु पूर्व में तीसरी नरक का आयुष्य बांधा हुआ होने से शुभ भावना करते करते, अचानक भाव धारा बदल गई। मन रौद्र ध्यान के वश हो गया और वे तीसरी नरक में चले गए।

इससे विपरीत मदनरेखा को पाने के लिए मणिरथ ने अपने छोटे भाई युगबाहु के सीने में छुरी भोंकी, तब पहले तो वह इस विश्वासघात से अपने भाई पर अति कूपित हुआ। मन में वैर के भाव बढ रहे थे। परंतु उसी समय मदनरेखा ने पति के मरण को निकट जानकर उसे निर्यामणा कराना शुरु किया। उसने अपने पति को समझाते हुए कहा कि ''वास्तव में अपना शत्रु और कोई नहीं बल्कि अपना ही कर्म है–अन्य तो केवल निमित्त मात्र है।'' इस प्रकार अपने पति को समता के अमृत सिंचन द्वारा हितोपदेश से शांत कर, देवलोक का महर्द्धिक देव बनाया।

इससे ख्याल आता है कि अंत समय में आत्मा का कल्याणमित्र की कितनी आवश्यकता है ! अपना मरण कब और कहाँ होगा, इससे हम अज्ञात है। इसलिए प्रतिपल जागृती जरुरी है। अध्यात्म योगी पूज्य पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. कहते थे–''Live as you have to die today'' जीवन और मरण को सुधारने हमें भी इस सूत्र को आत्मसात् करने की जरुरत है।

जैसे जन्म के लिए महाविदेह क्षेत्र श्रेष्ठ है, वैसे ही मरण के लिए शत्रुंजय गिरिराज की भूमि श्रेष्ठ है। स्तवन की पंक्ति में श्री तिलकविजयजी ने गाया है–

ऐसी दशा हो भगवन ! जब प्राण तन से निकले...
गिरिराज की हो छाया, मन में न होवे माया,
तप से हो शुद्ध काया, जब प्राण तन से निकले...
उर में न मान होवे, दिल एकतान होवे,
तुम चरण ध्यान होवे, जब प्राण तन से निकले...

6

श्री ज्ञाता-धर्मकथा सूत्र

द्वादशांगी में छठा अंग–श्री ज्ञाताधर्मकथा सूत्र है । प्राकृत में इसे **'नायाधम्मकहाओ'** के नाम से जाना जाता है । पूर्व काल में यह आगम ग्रंथ 5,76,000 पद प्रमाण था । वर्तमान में इस सूत्र का मूल 5,500 श्लोक प्रमाण उपलब्ध है । इस पर नवांगी टीकाकार पूज्य आचार्य श्री अभयदेवसूरीश्वरजी द्वारा रचित 3800 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है । दोनों मिलाकर 9200 श्लोक प्रमाण साहित्य उपलब्ध है ।

ज्ञाता और धर्मकथा के नाम से इसमें दो श्रुतस्कंध होने के कारण इसका नाम ज्ञाता धर्मकथा सूत्र है । पहले ज्ञाता नाम के श्रुत स्कंध के 19 अध्ययन में 19 कथाएँ है और दूसरे धर्मकथा नाम के श्रुतस्कंध में 10 वर्ग में 206 कथाएँ है । पूर्वकाल में यह आगम साढे तीन करोड कथाओं से भरा हुआ था, अब मात्र 225 कथाएँ है । आत्महितकर उपदेश देने वाली कुछ वास्तविक कथाएँ है, तो कुछ काल्पनिक-रुपक कथाएँ भी है । प्रथम श्रुतस्कंध में रहे 19 अध्ययनों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

1) उत्क्षिप्त अध्ययन :– इस अध्ययन में श्रेणिक महाराजा के पुत्र मेघकुमार का वर्णन है । पूर्व भव में हाथी के रूप में एक खरगोश पर की करुणा ने, इस जन्म में करुणानिधान भगवान महावीर से मिलन कराया । करुणा का महत्त्व बताने वाला यह अध्ययन इस आगम में सबसे बडा है ।

2) संघाड अध्ययन :– इस अध्ययन में धन्ना शेठ और उसके पुत्र के हत्यारे चोर का दृष्टांत दिया है । जैसे शेठ और हत्यारा कारागृह में एक साथ बंधे होने पर मजबूरी से शेठ, उसे अपना आधा भोजन देता है, वैसे ही साधु के लिए यह शरीर शत्रु समान है । इसे पुष्ट करने की इच्छा न होने पर भी ज्ञानादि साधना में सहायक होने से भोजन देना पड़ता है । अतः साधु को आहार की क्रिया करते हुए भी आहार का आनंद नहीं होता है ।

3) अंड अध्ययन :– इस अध्ययन में धर्माराधना में होने वाले शंका आदि दोषों के त्याग करने हेतु सार्थवाह के दो पुत्र-जिनदत्त और सागरदत्त का वर्णन है । दोनों को मोर के अंडे मिलते है । जिनदत्त को मोर प्राप्ति में श्रद्धा थी अतः वह मोर प्राप्त कर कमाई करता है, जबकि सागरदत्त को मोर प्राप्ति में शंका थी, अंतः उसे मोर प्राप्त नहीं होता है । कथा का तात्पर्य है कि– **धर्म की आराधना–शंकादि दोषों का त्यागकर पूरी श्रद्धा से करनी चाहिए ।**

4) कूर्म अध्ययन :– इस अध्ययन में चपलता दोष का त्याग करने हेतु दो कछुओं का दृष्टांत दिया है । सरोवर से बाहर निकले दो कछुओं को देख सियार उनके शिकार का प्रयत्न करता है, तब सावधान बनकर दोनों अपने अंगोपांग संकोचित कर सुरक्षित रहते है । समय बीतने पर एक कछुआ धीरज खो देता है और सियार का शिकार बन जाता है । जबकि दूसरा संकोचित अंगोपांग वाला सुरक्षित रहता है । कथा का तात्पर्य है कि–**साधक को हमेशा इन्द्रियों की चंचलता का त्याग कर जितेन्द्रिय बनना चाहिए ।**

5) शैलक अध्ययन :– इस अध्ययन में प्रमाद दोष का त्याग करने के लिए शैलक–पंथक की कथा है । शैलक राजर्षि ने रोग की चिकित्सा के कारण अपवाद का सेवन किया । उन्हें अपवाद सेवन करते हुए अनुकूलता में आसक्ति हो गई । तब अन्य शिष्य ने उनका त्याग कर दिया, मात्र स्व-आचार में स्थिर रहकर पंथक मुनि ने गुरुसेवा की । चातुर्मासिक क्षमापना करते समय पंथक मुनि से शैलक राजर्षि जागृत बने । प्रमाद छोड़कर शत्रुंजय गिरिराज पर मोक्ष में गये । कथा का तात्पर्य है कि–**प्रमाद दोष की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । एक छोटा भी प्रमाद आत्मा को पतन के गर्त में गिरा देता है और अप्रमत्त भाव से की गई साधना मोक्ष प्रदान करती है ।**

6) तुंब अध्ययन :– इस अध्ययन में कर्ममल से मुक्त बनने के लिए तुंबडे का उदाहरण दिया है । जैसे मिट्टी के लेप से लिप्त तुंबडा पानी में डुबता है और जब लेप दूर हटता है तब पानी के ऊपर तैरता है वैसे ही **कर्ममल से भारी बनी आत्मा संसार सागर में डुबती है और कर्म मल से मुक्त बनी आत्मा मोक्ष प्राप्त करती है ।**

7) रोहिणी अध्ययन :– इस अध्ययन में साधुओं की योग्यता-पात्रता का निर्देश करने के लिए चार पुत्रवधुओं का दृष्टांत दिया है । श्वसुर के द्वारा दिये चावल के दानों को उज्झिका-फैंक देती है, भक्षिका-खा जाती है, रक्षिका-अलमारी में रक्षण करती है और रोहिणी–पिता के घर भेज उसकी खेती करवाती है । इस दृष्टांत से साधुओं का स्वरुप बताते है कि–जो साधु महाव्रतों की विराधना करते है, वे उज्झिका जैसे है । जो साधु मात्र जीवन निर्वाह करने के लिए महाव्रतों का उपयोग करते है, वे भक्षिका जैसे है । जो साधु निरतिचार चारित्र का पालन करके जल्दी मुक्ति प्राप्त करते है, वे रक्षिका जैसे है और जो साधु स्वकल्याण के साथ अनेक आत्माओं का उद्धार करते है, वे रोहिणी जैसे है । **स्व-पर आत्मकल्याण की भावना वाले रोहिणी समान साधु विश्वपूज्य बनते है और भविष्य में तीर्थंकर पद प्राप्त कर मोक्ष में जाते है ।**

8) मल्ली अध्ययन :– इस अध्ययन में माया दोष के त्याग हेतु 19 वें तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ भगवान का जीवन चरित्र दिया है । पूर्व भव में छह मित्रों के साथ संयम स्वीकार कर तप में माया करने के कारण, तप के प्रभाव से तीर्थंकर तो बने, परंतु अनंत काल में आश्चर्य गिना जाय ऐसा स्त्री का अवतार मिला । अतः **धर्म आराधना में माया दोष के त्याग करना चाहिए ।**

9) माकन्दी अध्ययन :– इस अध्ययन में मन पर विजय पाने के लिए माकन्दी सार्थवाह के पुत्र जिनपालित और जिनरक्षित का दृष्टांत दिया है । व्यापार के लिए परदेश जाते समय उनका जहाज समुद्र में डुब गया । वे दोनों बच गये । परंतु टापू पर दुष्ट देवी के जाल में फँस गये । जिनरक्षित– देवी पर मोहित हो गया तो उसे मरना पड़ा जबकि जिनपालित ने मन को काबू में रखा तो समय जाते वहाँ से बचकर घर पहुंच गया । कथा का तात्पर्य है कि– **जो मन का विजेता बना वह मुक्त हो गया और जो मन से हार गया वह फँस गया ।**

10) चन्द्र अध्ययन :– इस अध्ययन में गुणों के विकास हेतु चन्द्र का दृष्टांत दिया है । चन्द्र के काल्पनिक दृष्टांत से बताया है कि जैसे शुक्ल पक्ष का चन्द्र दिन-प्रतिदिन बढ़ते बढ़ते पूर्णता को प्राप्त करता है

वैसे ही **हमे भी गुण प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए एवं प्राप्त गुण का ह्रास न हो इसके लिए सावधान बनना चाहिए ।**

11) दावद्रव अध्ययन :– इस अध्ययन में आक्रोश परिषह सहन करने के लिए दावद्रव अर्थात् वृक्ष का उदाहरण दिया है । जैसे समुद्र के तट पर रहा वृक्ष तेज हवा को सहन करे तो टिक सकता है, अन्यथा मूल से नष्ट हो जाता है, वैसे ही **जो आक्रोश परिषह को सहन करता है वही आराधक बन सकता है, अन्यथा विराधक बनता है ।**

12) उदकज्ञात अध्ययन :– इस अध्ययन में पदार्थ को देखने की तत्त्वदृष्टि पर जितशत्रु राजा और सुबुद्धि मंत्री का दृष्टांत दिया है । तत्त्वदृष्टि वाला सुबुद्धि मंत्री प्रत्येक पदार्थों के वस्तुतत्त्व स्वीकार करता हुआ किसी भी पदार्थ को अच्छा या बूरा नहीं मानता था । अच्छे-बूरे पदार्थ को मात्र 'पुद्गल का खेल' कहकर अलिप्त रहता था । राजा को यह बात समझाने के लिए उसने गट्टर का गंदा पानी, स्वच्छ कर उसमे सुगंधी द्रव्य मिलाकर राजा को पिलाया । कथा का तात्पर्य है कि–**जगत् के सभी पदार्थ परिवर्तनशील है । अतः अच्छे पदार्थ पर राग और बूरे पदार्थ पर द्वेष न करते हुए समभाव धारण करना चाहिए ।**

13) दर्दुरज्ञात अध्ययन :– इस अध्ययन में विराधना और आराधना का फल बताने के लिए नंद मणियार का दृष्टांत दिया है । स्वयं के बनाये तालाब और बगीचे पर आसक्ति के कारण नंदमणियार मरकर वही पर मेंढक के रुप में पैदा हुआ । कालांतर में जब प्रभु वहाँ पधारे तब लोगों के मुख से प्रभु के आगमन को सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ, पश्चात्ताप के साथ प्रभु की ओर जाते समय रास्ते में घोडे की खूर से मरकर दर्दुरांक देव बना । कथा का तात्पर्य है कि–**जीवात्मा की आराधना ऊपर उठाती है और विराधना नीचे डुबाती है । अतः सदा सावधानी जरुरी है ।**

14) तेतलिपुत्र अध्ययन :– इस अध्ययन में साधुओं को संसार पोषक बातों के त्याग का संदेश देने तेतलिपुत्र, पोट्टिला और साध्वीजी का दृष्टांत दिया है । पति-पत्नी ऐसे तेतलिपुत्र और पोट्टिला के बीच किसी कारण अप्रीति हुई । पोट्टिला ने साध्वीजी को पति के साथ अप्रीति

दूर करने का उपाय पूछा । संयम जीवन की मर्यादा में जागृत साध्वीजीने संसार पोषक बातों का निषेध कर उसे धर्म समझाया । कथा का तात्पर्य है कि–**साधुओं को संसार पोषक बातों से सदा दूर रहना चाहिए ।**

15) नंदीफल अध्ययन :– इस अध्ययन में इन्द्रिय के क्षणिक सुखों को जहरीले फल समान बताया है । जंगल में उगने वाला जहरीला फल ही नंदी फल है । वह देखने में सुंदर, सुगंधी और मीठा होता है । देखते ही मन को हर लेता है । परंतु प्रारंभ में उसका आस्वाद अति मधुर होने पर भी परिणामतः मृत्यु का ही कारण बनता है । वैसे ही **पांच इन्द्रियों के विषय सुख भी प्रारंभ में मधुर और परिणामतः भव की परंपरा को बढाने वाले है । अतः इनसे सावधान रहना चाहिये ।**

16) द्रौपदी अध्ययन :– इस अध्ययन में छोटी सी भूल को छिपाने से होने वाले नुकसान को बताने महासती द्रौपदी का दृष्टांत दिया है । नागश्री के भव में उसने धमरुचि अणगार को जहरीली तुंबडी वोहराई वहोराई थी । उसे परठते-परठते धर्मरुची अणगार केवलज्ञान पाकर सिद्ध बने । नागश्री मुनि हत्या के पाप से दुर्गति में गयी । अनेक भव में भ्रमण कर सुकुमालिका के भव में दीक्षा ली । पांच पुरुषो के साथ वेश्या को देख उसने अगले भव में भोग सुख प्राप्ति का निदान किया, जिससे द्रौपदी के भव में उसे पांच पति हुए । अंत में दीक्षा लेकर स्वर्ग में गयी । कथा का संदेश है कि–**छोटी भी भूल को छुपाने के लिए जो व्यक्ति निंदनीय प्रवृत्ति करता है, उसे जन्म जन्मांतर में दुःखी होना पडता है ।**

17) आकीर्णज्ञात अध्ययन :– इस अध्ययन में विषयभोग के कुपरिणाम को बताने के लिए उत्तम जाति के घोडों का दृष्टांत दिया है । जंगल में स्वतंत्र घुमते कुछ घोडे स्वादिष्ट खाद्य सामग्री में लुब्ध बने, वे पकडे गये । उन्हें बांधा गया । वे परतंत्र हुए । उन्हें वध-बंधन आदि के दुःख को प्राप्त हुए । जो लुब्ध नहीं हुए, वे स्वतंत्र रहे । कथा का तात्पर्य है कि–**जो विषयाधीन बनते है, उन्हें पराधीनता सहनी पड़ती है और जो विषयों से दूर रहते है, वे स्वतंत्र रहते है ।**

18) सुषिमा अध्ययन :– इस अध्ययन में **``शरीर को टिकाने के**

लिए दिये जाने वाले भोजन पर आसक्ति का भाव नहीं रखना चाहिये'' यह बताने सुषिमा का दृष्टांत है । जब चिलातीपुत्र, सुषिमा का अपहरण करता है तब सुषिमा के भाई और पिता आदि उसके पीछे दौंडतें है । उन्हें देख चिलातीपुत्र सुषिमा का मस्तक काटकर ले जाता है । पीछे आते पिता-भाई आदि सुषिमा का धड देख खुब शोक करते है । फिर घने जंगल में क्षुधातुर हुए भोजन को ढूढ़ते है, परंतु भोजन नहीं मिलता है, तब मजबूरी से उन्हे सुषिमा के मांस का भक्षण करना पड़ता है । मांस भक्षण करते हुए भी उन्हें उसमें आसक्ति नहीं होती वैसे ही **हमें भोजन करते समय आसक्ति का त्याग करना चाहिए ।**

19) पुंडरिक अध्ययन :– इस अध्ययन में वैराग्य वृद्धि हेतु पुंडरिक–कंडरिक का दृष्टांत है । दीर्घ काल तक संयम जीवन का पालन करने पर भी रसनेन्द्रिय की आसक्ति में कंडरीक मुनि साधना को हार कर साँतवी नरक में है, जबकि विरक्ति भाव से राज्य का पालन करके अंत में दीक्षा स्वीकार कर पुंडरिक राजा सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव बनते है । अतः आत्म जागृति अत्यंत जरुरी है ।

दुसरे श्रुतस्कंध में संयम जीवन का स्वीकार करके भी जो महाव्रतों के पालन में प्रमादी रहते है, वे मोक्ष अथवा वैमानिक देवलोक प्राप्त नहीं कर सकते । मात्र कायाक्लेश के बल पर वे भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष देवलोक में देव बनते है । ऐसे देवलोक को पाने वाले 56 इन्द्रों की 206 इन्द्राणिओं के पूर्व जन्म की कथाएँ इस श्रुतस्कंध में है ।

धर्मकथाओं से भरा यह ग्रंथ बाल जीवों के लिए अत्यंत ही प्रेरणादायी है ।

7

उपासक दशांग सूत्र

द्वादशांगी में सांतवाँ अंग–**उपासक दशांग सूत्र** है । प्राकृत में इसे **'उवासग दसा'** के नाम से जाना जाता है । पूर्व काल में यह आगम ग्रंथ 11,42,000 पद प्रमाण था । वर्तमान में इस सूत्र का मूल 812 श्लोक प्रमाण है । जिसपर नवांगी टीकाकार पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय अभयदेवसूरीश्वरजी म.सा. विरचित 800 श्लोक प्रमाण वृत्ति उपलब्ध है । दोनों मिलाकर 1612 श्लोक प्रमाण साहित्य वर्तमान में उपलब्ध है । इसके सिवाय इस आगम पर निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य आदि अन्य कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है ।

उपासक शब्द का अर्थ है **''पास में रहनेवाला''** । जो साधक श्रमण ऐसे साधु भगवंतो के पास में रहे वह श्रमणोपासक कहलाता है । इसी तरह जो साधक श्रमणों की उपासना–सेवा–वैयावच्च करे, वह श्रमणोपासक, या जो साधक श्रमणों के वचनों का श्रवण करे, वह श्रमणोपासक अथवा जो साधक श्रमण बनने की अभिलाषा वाला हो, वह श्रमणोपासक । ऐसे अनेक अर्थों से स्पष्ट होता है कि यहाँ उपासक शब्द से श्रावक को प्रधानता दी गई है ।

धर्मकथानुयोग के इस आगम ग्रंथ में भगवान महावीर स्वामी के धर्मोपदेशों का श्रवण कर श्रावक जीवन के समकित मुल बारह व्रतों को स्वीकार करने वाले आनंद श्रावक आदि 10 महाश्रावकों का जीवन चारित्र है । वैसे तो भगवान महावीर स्वामी की श्रावक संपदा में 1,49,000 श्रावक थे, उनमें आनंद श्रावक आदि महाश्रावकों का जीवन अतिविशिष्ट था, उन दस श्रावकों के नाम से यहाँ 1) आनंद, 2) कामदेव, 3) चुलनीपिता 4) सूरादेव, 5) चुल्लशतक, 6) कुंडकौलिक 7) शकटाल पुत्र, 8) महाशतक, 9) नन्दिनीपिता 10) शलिहीपिता नाम के दस अध्ययन है ।

इन दस श्रावकों के जीवन साधुओं के लिए भी प्रेरणादायी है, तो श्रावकों को तो क्या बात करें ? कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी ने योग शास्त्र के तृतीय प्रकाश में कहा है–

संसर्गेऽप्युपसर्गाणां, दृढव्रत परायणाः ।
धन्यास्ते कामदेवाद्या, श्लाघ्यास्तीर्थकृतामपि ।।138।।

अर्थात् – उपसर्ग के प्रसंग में भी जो अपने व्रतों में दृढ थे ऐसे कामदेवादि श्रावक धन्य है, जिनकी प्रशंसा तीर्थंकर ने भी की है ।

सभी दस श्रावकों का जीवन अति उत्तम है । वर्तमान में जो धन–संपत्ति किसी देश के राजा के पास न हो, उससे भी अधिक धन संपत्ति के मालिक होने पर भी भगवान महावीर की मात्र एक देशना को सुनकर सभी ने समकित सहित बारह व्रतों का स्वीकार किया । नौ प्रकार के परिग्रह का परिमाण कर, जीवन भर विद्यमान संपत्ति को अल्प-अल्पतर ही करते रहे । 14 वर्ष तक निरतिचार श्रावक धर्म का पालन करते हुए सारे नियमों का संक्षेप किया और आगे बढ़ते हुए **संवासानुमति श्रावक** की भूमिका प्राप्त की । घर-परिवार की जिम्मेदारी पुत्र आदि को देकर पंद्रहवें वर्ष में श्रावक जीवन के योग्य ग्यारह प्रतिमा (प्रतिज्ञा विशेष) का दृढ़तापूर्वक पालन किया ।

घोर तपश्चर्या के द्वारा शरीर को कृश करके अंतिम समय संलेखना सहित भक्त-प्रत्याख्यान अनशन स्वीकार किया । शुभ भावों के परिणाम स्वरुप उन्हें अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ । एक महिने का अनशन पूरा कर समाधि मृत्यु से प्रथम देवलोक में चार पल्योपम की स्थिति वाले देव हुए और वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म पाकर संयम स्वीकार करके मोक्ष में जाएगें ।

आनंद श्रावक के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना–

निर्मल व्रत की साधना एवं अनशन के फलस्वरुप आनंद श्रावक को अवधिज्ञान प्राप्त हुआ । एक बार गौतम स्वामीजी छट्ठ के पारणे हेतु भिक्षा लेने वाणिज्य ग्राम में पधारे । लोगों के मुख से आनंद श्रावक के अनशन की बात सुनकर वे आनंद श्रावक की पौषध-शाला में पधारे । शारीरिक अस्वस्थता के कारण संथारे में रहते हुए उन्होंने गौतम स्वामी को भावपूर्वक चरण स्पर्शकर वंदना की और पूछा–

हे भगवंत ! क्या श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है ?

समाधान में गौतम स्वामी ने कहा–हां, हो सकता है ।

तब आनंद श्रावक ने कहा–``हे भगवंत मुझे अवधिज्ञान हुआ है । पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में 500 योजन तक तथा उत्तर दिशा में लघु हिमवंत पर्वत तक देख सकता हूँ । उपर की दिशा में पहला देवलोक और नीचे पहली नरक के लोलुपाच्युत नरक भूमि तक देख सकता हूँ ।''

इस बात को सुनकर गौतमस्वामी ने कहा कि–हे आनंद ! श्रावक को इतने क्षेत्र का अवधिज्ञान नहीं हो सकता अतः तुम्हे मिच्छा-मि-दुक्कडम् देना होगा ।

आनंद श्रावक ने कहा–हे भगवंत ! जैन शासन में सत्य बोलने का मिच्छा–मि–दुक्कडम् होता है, या असत्य का ?

गौतमस्वामी ने कहा–हे आनंद ! जैन शासन में सत्य बोलने का मिच्छा-मि-दुक्कडम् नहीं होता, असत्य बोलने का ही मिच्छा-मि-दुक्कडम् होता है ।

तब विनयपूर्वक आनंद श्रावक ने कहा–हे भगवंत ! मिच्छा-मि-दुक्कडम् तो आपको देना होगा, क्योंकि मेरा कथन बिल्कूल ही सत्य है ।

इसका निर्णय भगवान महावीर से करने हेतु करने गौतम स्वामी प्रभु के पास समवसरण में पधारें ।

प्रभु को पूछा–हे भगवंत ! अवधिज्ञान के विषय में आनंद श्रावक की बात सत्य है या मेरी ?

प्रभु ने कहा–हे गौतम ! आनंद श्रावक की बात सत्य है, श्रावक को उतने क्षेत्र का अवधिज्ञान हो सकता है, अतः तुम्हे जाकर आनंद श्रावक को मिच्छा–मि–दुक्कडम् देना होगा ।

`तहत्ति' ! कहकर प्रभु की बात का स्वीकार करके गौतम स्वामी ने तुरंत ही बिना किसी संकल्प–विकल्प के आनंद श्रावक के पास जाकर मिच्छा-मि-दुक्कडम् दिया ।

स्वयं द्वादशांगी के रचयिता, प्रथम गणधर, 50,000 केवली शिष्य के गुरु, मनःपर्यव ज्ञानी और अनंत लब्धी के धारक होने पर भी अपनी भूल का स्वीकार करने में गौतम स्वामी कितने नम्र और सरल थे, यह इस बात से स्पष्ट होता है ।

महाशतक श्रावक के जीवन की प्रेरणादायी घटना –

महाशतक श्रावक की पत्नी अनुकूल नहीं थी । उसका नाम रेवती था । वह भोग–विलास और मौज–मजा में आसक्त थी । पर्वदिनों में जब पति पौषध आदि धर्माराधना करता तब वह दारु के नशे में चकचूर बनकर बड़ा हंगामा करती, ऐसी परिस्थिति में एक बार महाशतक के मुंह से ऐसे शब्द निकल गये, कि **''सात दिन बाद तेरा मरण होगा और तू मरकर नरक में जाएगी ।''**

दूसरे दिन जब महाशतक परमात्मा के पास गये, तब प्रभु महावीर ने कहा–**''हे महाशतक ! सत्य भी यदि अप्रिय हो तो वह नहीं बोलना चाहिए, अतः तुम्हें रेवती को मिच्छा–मि–दुक्कडम् देना चाहिए ।''**

महाशतक ने प्रभु की आज्ञा स्वीकार कर पत्नी से माफी मांगी ।

इन महाश्रावकों के जीवन चरित्रों से हमे सत्त्वशीलता, सदाचार, कठोर पुरुषार्थ, क्षमा आदि गुणों को आत्मसात् करने की सुंदर प्रेरणा मिलती है ।

8

अंतकृद् दशांग सूत्र

द्वादशांगी का आठवां अंग–**श्री अंतकृद् दशांग सूत्र** है । प्राकृत भाषा में इसे **'अंतगडदसा'** के नाम से जाना जाता है । पूर्वकाल में यह आगम ग्रंथ 22,84,000 पद प्रमाण था । वर्तमान में मात्र 850 मूल श्लोक प्रमाण है, जिसपर नवांगी टीकाकार **पूज्य आचार्य श्री अभयदेवसूरिजी** विरचित 400 श्लोक प्रमाण लघु विवरण टीका है । दोनों मिलाकर 1250 श्लोक प्रमाण साहित्य उपलब्ध है ।

'अंतकृत' की व्याख्या करते हुए टीकाकारश्री ने कहा है–**''तत्रान्तः भवान्तः कृतो विहितो यैस्ते अन्तकृताः ।''** अर्थात्–जिनके द्वारा भव का अंत किया गया है वे अन्तकृत है । धर्मकथानुयोग के इस ग्रंथ में उन महापुरुषों की जीवन कथा है, जिन्होंनें संयम और तपश्चर्या के बल पर आठ कर्मों को जीतकर संसार का अंत किया है । केवलज्ञान पाकर मात्र अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष प्राप्त करनेवाले 90 पुण्यात्माओं के जीवन का वर्णन आठ वर्गों में किया गया है । इनमें से 51 पुण्यात्मा श्री नेमिनाथ परमात्मा के शासन में हुए श्री कृष्ण वासुदेव के 10 चाचा, 25 भाई, 8 पत्नी, 2 पुत्र, 2 पुत्रवधु, 3 भतीजे और 1 पौत्र है । अन्य 39 पुण्यात्मा भगवान महावीर परमात्मा के शासन काल में हुए है ।

आठ वर्गों में आने वाले जीवन चरित्र के अनुसार इनमें क्रमश दस, आठ, तेरह, दस, दस, सोलह, तेरह और दस अध्ययन है ।

• **पहले वर्ग में–**वैश्रमण देव के द्वारा बनाई द्वारिका नगरी, कृष्ण महाराजा का विशाल परिवार का वर्णन है । इनमें राजा अन्धकवृष्णि और धारिणी के दस पुत्र–गौतम, समृद्ध, सागर, गंभीर, स्तिमित, अचल, कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेनजित् और विष्णु के जीवन आधारित दस अध्ययन है । इन सभी ने प्रभु नेमिनाथ के पास दीक्षा स्वीकार कर गुणरत्न संवत्सर तप आदि घोर तपश्चर्या करके शत्रुंजय महातीर्थ पर एक महिने का अनशन कर मोक्ष प्राप्त किया है ।

• **दूसरे वर्ग में** अक्षोभ आदि आठ राजकुमारों का जीवन चरित्र है। उन्होंने भी चारित्र स्वीकार कर, गुणरत्नसंवत्सर आदि तप कर शत्रुंजय महातीर्थ पर मोक्ष प्राप्त किया था।

• **तीसरे वर्ग में** अनीयसकुमार, अनंतसेन आदि अन्य छह श्रेष्ठि पुत्र तथा श्री कृष्ण वासुदेव के छोटे भाई गजसुकुमाल महामुनि आदि का जीवन चरित्र है।

• **चोथे वर्ग में** जालि, मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वारिषेण, प्रद्युम्न, शांब, अनिरुद्ध, सत्यनेमि और दृढनेमि नाम के राजकुमारों का वर्णन है।

• **पांचवें वर्ग में** श्री कृष्ण महाराजा की पद्मावती, गोरी, गंधारी, लक्ष्मणा, सुषमा, जम्बुवती, सत्यभामा और रुक्मिणी नाम की आठ महारानी तथा शांबकुमार की मूलश्री और मूलदत्ता नाम की दो रानी के जीवन का वर्णन है। इसी के साथ द्वारिका नगरी के नाश, द्वेपायन ऋषी का कोप, कृष्ण महाराजा की जराकुमार के बाण से मृत्यु उनका तीसरी नरक में गमन, एवं उत्सर्पिणी में बारहवें तीर्थंकर के रुप में मोक्ष प्राप्ति आदि का सुन्दर वर्णन–पद्मावती महारानी के दीक्षा के प्रसंग पर किया गया है।

• **छठे वर्ग में** भगवान महावीर के शासन में हुए मकाई, किंकम, अर्जूनमाली आदि सोलह महापुरुषों का वर्णन है। पंद्रहवें अध्ययन में विजय राजा और श्रीदेवी रानी के पुत्र–अईमुत्ता मुनि के दीक्षा स्वीकार एवं बाल्यवय में केवलज्ञान प्राप्ति का सुन्दर वर्णन है।

• **सातवें वर्ग में** श्रेणिक महाराजा की तेरह महारानीओं का वर्णन है।

• **आठवें वर्ग में** श्रेणिक महाराजा की दस रानीओं का वर्णन है।

इनकी साधना को बताते इसमे रत्नावली तप, कनकावली तप, लघु-सिंह निष्क्रीडित तप, महा-सिंह निष्क्रीडित तप, सप्तसप्तमिका, भिक्षु प्रतिमा तप, लघु-सर्वतोभद्र प्रतिमा तप, महा-सर्वतो भद्र प्रतिमा तप, भद्रोत्तर प्रतिमा तप, मुक्तावली तप, वर्धमान तप, गुणरत्नसंवत्सर तप आदि का वर्णन है।

इन महापुरुषों के जीवन चरित्रों से पता चलता है कि मुक्ति की साधना हेतु बाह्य और अभ्यंतर दोनों ही प्रकार के तप अति महत्त्वपूर्ण है।

9

अनुत्तरोपपातिक दशांग सूत्र

द्वादशांगी का नौवा अंग है–**अनुत्तरोपपातिक दशांग सूत्र ।** प्राकृत भाषा में इसे **'अनुत्तरोववाइय दसा'** नाम से जाना जाता है । पूर्व काल में यह आगम 45,68,000 पद प्रमाण माना जाता है । वर्तमान में यह आगम 192 श्लोक प्रमाण मूल सूत्र है, जिसपर नवांगी टीकाकार **श्री अभयदेवसूरीश्वरजी** विरचित 100 श्लोक प्रमाण लघुवृत्ति टीका है ।

`अनुत्तरोपपातिक दशा' शब्द, तीन शब्दो से संयोजित है । अनुत्तर अर्थात् सर्व श्रेष्ठ–यहाँ अनुत्तर देव विमान का संदर्भ है । उपपात अर्थात् उत्पन्न होना–जन्म लेना । तथा दशा अर्थात् अवस्था । इस तरह इस आगम ग्रंथ में अनुत्तर देव विमान में जन्म लेने वाले साधकों की अवस्था का वर्णन होने से इसका नाम अनुत्तरोपपातिक दशांग सूत्र है । धर्म कथानुयोग के इस आगम में एक श्रुतस्कंध है, जिनमें तीन वर्ग है ।

प्रथम वर्ग में दस अध्ययन है । जिनमें प्रत्येक अध्ययन में जालिकुमार आदि 10 श्रेणिक महाराजा के पुत्रों का जीवन चरित्र है । इन दस राजपुत्र में सात की माता धारिणी रानी थी, दो की माता चेलना रानी थी और एक–अभयकुमार की माता नंदा रानी थी । पूर्व जन्म में किसी विशिष्ट धर्म आराधना के फलस्वरुप इस जन्म में राज परिवार के साथ रत्नत्रयी की प्राप्ति हुई । भगवान महावीर की धर्म देशना से प्रतिबोध पाकर, माता–पिता की आज्ञा से दीक्षित बने । अप्रमत्त संयम साधना एवं घोर तपश्चर्या के द्वारा अंतिम समय संलेखना करके अनुत्तर देव विमान में उत्पन्न हुए । वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे ।

दूसरे वर्ग में तेरह अध्ययन है । जिनमें प्रत्येक अध्ययन में महाराजा श्रेणिक एवं धारिणी रानी के दीर्घसेन, महासेन आदि तेरह राजकुमारों के जीवन चरित्र है । भगवान महावीर के पास चारित्र धर्म का स्वीकार कर

16 वर्ष तक संयम जीवन का पालन कर पांच अनुत्तरों में से दो महामुनि विजय नाम के, दो महामुनि वैजयंत नाम के, दो महामुनि जयंत नाम के, दो महामुनि अपराजित नाम के एवं पांच महामुनि सर्वार्थसिद्ध नाम के अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए ।

तीसरे वर्ग में दस अध्ययन है । जिनमें 1) धन्ना अणगार, 2) सुनक्षत्र, 3) ऋषिदास, 4) पेलक, 5) राम-पुत्र, 6) चन्द्रकुमार, 7) पोष्टीपुत्र, 8) पेढालकुमार 9) पोटिलकुमार 10) बहलकुमार आदि महामुनियों के जीवन चरित्र है । इनमें धन्ना अणगार का जीवन चरित्र विशेष प्रेरणादायी होने से उसे कुछ विस्तार से बताया है–

मगध सम्राट श्रेणिक महाराजा ने परमात्मा महावीर स्वामी को प्रश्न पूछा–`हे भगवंत ! आपके चौदह हजार शिष्यों में से महादुष्कर कारक और महानिर्जरा-कारक महामुनि कौन है ?'

भगवान महावीर ने कहा–``हे श्रेणिक ! इन्द्रभूति आदि चौदह हजार शिष्यों में धन्ना अणगार महादुष्कर-कारक और महानिर्जरा-कारक है ।

उनको वन्दन करने की इच्छा से जब श्रेणिक महाराजा ने प्रभु को उनका स्थान आदि परिचय पूछा तब प्रभु ने उनकी घोर तपश्चर्या के कारण क्षीण हुए शरीर के अंगो का वर्णन किया । उनकी साधना सर्वोच्च थी । आठ महिनें तक के संयम जीवन में उन्होंने छट्ठ के पारणे छट्ठ का तप किया, पारणे में वे आयंबिल का तप करते थे । आयंबिल में भी लुखा–सुखा, अन्त-प्रांत भोजन लेते थे, जिसपर मक्खी भी बैठना पसंद न करे । ऐसी घोर तपश्चर्या के कारण उनके शरीर में मात्र हड्डी और चमडी बची थे, मांस–खून आदि सभी सूख गये थे । मात्र हड्डिओं का ढांचा हो वैसे शरीर में भी उनका मन सदा शुभध्यान में स्थिर रहता था, जिसके कारण वे परमात्मा के मुख से प्रशंसा पात्र बने । दीक्षा जीवन के नौवें महिने में एक महिने की अंतिम संलेखना करके सर्वार्थ सिद्ध विमान में 33 सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले देव बने । वहाँ से च्यवकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष प्राप्त करेंगे ।

10

प्रश्न व्याकरण सूत्र

द्वादशांगी में दसवां अंग–श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र है । प्राकृत भाषा में इस आगम में **'पन्हावागरण'** नाम से जाना जाता है । श्री समवायांग सूत्र, श्री नंदीसूत्र एवं श्री अनुयोग द्वार सूत्र में इस (प्रश्न व्याकरण सूत्र) का प्रमाण 91,36,000 पद बताया है । इसमें 45 अध्ययन थे, जिनमें 108 प्रश्न विद्याएँ, 108 अप्रश्न विद्याएँ एवं 108 प्रश्नाप्रश्न विद्याएँ तथा पूर्व के मुनिवरों ने नागकुमार आदि भवनपति देवों के साथ की हुई बातों का वर्णन था । वर्तमान में उपलब्ध इस आगम का मूल, मात्र 1300 श्लोक प्रमाण है, जिसपर नवांगी टीकाकार श्री अभयदेवसूरीश्वरजी विरचित 4600 श्लोक प्रमाण टीका एवं पूज्य श्री ज्ञानविमलसूरीश्वरजी विरचित 7500 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है ।

अनेक प्रकार की विद्याओं से भरपूर इस आगम ग्रंथ में, भविष्य में अनधिकारी व्यक्ति, विद्याओं का दुरुपयोग न करे, इसलिए विषय का परिवर्तन किया है । इस बात की स्पष्टता दोनों ही टीकाकारों ने अपनी टीका में की है । विद्याओं के स्थान पर वर्तमान में उपलब्ध इस आगम ग्रंथ का विषय आश्रव और संवर है । इस आगम में एक श्रुतस्कंध है, जिसमें 10 अध्ययन है । इस ग्रंथ का समावेश चरण–करणानुयोग में किया गया है । दस अध्ययनों में पहले पांच अध्ययनो में आश्रव के पांच द्वार–हिंसा, झूठ, चोरी, मैथून और परिग्रह का स्वरूप बतलाया है एवं पिछले पांच अध्ययनो में संवर के पांच द्वार अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का स्वरूप बतलाया है । इन अध्ययनो वर्णन का इस प्रकार है–

1) पहला हिंसा अध्ययन– इस अध्ययन में हिंसा का स्वरूप बताया है । हिंसा के 30 समानार्थी शब्दों को बताकर जलचर, स्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प, खेचर आदि विविध प्राणी तथा पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय की हिंसा के कारण बताए है । हिंसक प्राणी एवं

हिंसक मनुष्य की जातियों का निर्देश कर, हिंसा के फल स्वरूप उनका नरक और तिर्यंच गति में जन्म और प्राप्त होने वाली पीड़ाओं का वर्णन किया है । नरक में रहे 15 प्रकार के परमाधामी देव, उनके द्वारा दी जानेवाली पीड़ा, उस पीड़ा से त्रस्त बने नारक जीवों की करूण पुकार का दर्दभरा वर्णन कर, उन जीवों की नरक से निकलकर तिर्यंच गति में होने वाली दुःखभरी दुर्दशा का वर्णन किया है । साथ ही एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच के दुःखों का वर्णन, एवं मनुष्य गति में होनेवाले रोगों का वर्णन किया है । अंत में उपसंहार करते हुए कहा है कि–हिंसा के पाप कर्म से जीवात्मा नरक और तिर्यंच योनि में तथा कुमानुषी अवस्था में भटकते हुए अनंत दुःखों को प्राप्त करती है । हजारों वर्षों तक पारावार दुःख सहन करने पर भी इनसे छुटकारा नहीं मिलता है ।

2) दूसरा मृषावाद अध्ययन– इस अध्ययन में मृषावाद का स्वरूप बताया है । मृषावाद के 30 समानार्थी शब्द बताकर, असत्य के मुख्य चार कारण–क्रोध, लोभ, भय और हास्य को बताये है । सृष्टि की उत्पत्ति, संचालन और विनाश आदि की विभिन्न मान्यताओं का प्रसार करने वालो को मृषावादी बताकर उनका खंडन किया है । व्यक्ति धन, भूमि, कन्या और गाय आदि पशु संबंधी असत्य बोलता है । हिंसा और युद्धादि का उपदेश देने वाला भी वास्तव में मृषावादी है, यह बताकर मृषावाद का भयंकर फल कितना दारुण और कर्कश है, जिससे हजारों वर्षों तक छुटकारा नहीं मिलता है, ऐसा कहकर विवेकी पुरुष को मृषावाद के त्याग का उपदेश दिया है ।

3) तीसरा अदत्तादान अध्ययन– इस अध्ययन में अदत्तादान अर्थात् चोरी का स्वरूप बताया है । अदत्तादान के भी 30 समानार्थी शब्दों को बताकर चोरी के विविध प्रकार बताए है । धन को पाने की लालसा से बड़े–बड़े राजा भी अन्य राजा के साथ युद्ध करते है । युद्ध में होने वाली शस्त्र सज्जता एवं युद्ध के परिणाम से रक्तरंजित होनेवाली युद्ध भूमि की बिभत्सता बतलाकर अदत्तादान को ही इसका कारण बताया है । राजा से अतिरिक्त वनवासी चोर, समुद्र में डकैती करनेवाले तथा गांव नगरों में लूट करने वाले चोरों का वर्णन कर उन्हें, कारागृह में कैसी सजा होती है ? इसलोक और परलोक में किस प्रकार की दुःख परंपरा का सामना

करना पडता है, इसका वर्णन किया है । संसार को एक सागर की उपमा देकर संसार के सभी दोषों को संसार सागर का अंग बताया है । अंत में भवांतर में होनेवाली अपार यातनाओं का वर्णन कर कहा है कि इन दु:खों को सहन किये बिना हजारों जन्मों से भी बंधे हुए पापों से छुटकारा नहीं होता ।

4) चौथा अब्रह्म अध्ययन– इस अध्ययन में अब्रह्म का स्वरूप बताया है । 30 समानार्थी नाम बताकर कहा है कि अब्रह्म के कीचड़ में फँसे देवता, तिर्यंच और मनुष्य विषय भोग के द्वारा मात्र चारित्र मोहनीय कर्म का बंध करते हैं । जैसे अग्नि कभी भी इन्धन से तृप्त नहीं होती, वैसे ही इन्द्रिय के सुखों में अतृप्त जीव को चाहे कितना भी ऊँचे से ऊँचा भौतिक सुख प्राप्त हो जाय, वह हमेशा अतृप्त ही रहता है । यह समझाने के लिए यहाँ पर चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, मांडलिक राजा एवं युगलिकों की भोग समृद्धि, ऋद्धि का वर्णन किया है । तीन पल्योपम के आयुष्य वाले युगलिक मनुष्य जीवन के अंत तक उत्कृष्ट मानवीय भोगों का उपभोग करने पर भी अतृप्त रहकर ही मृत्यु प्राप्त करते है, तो मात्र 50-100 वर्ष के आयुष्य में तुच्छ भौतिक सुखों के लिए जो परस्त्री में लुब्ध बनता है वह कैसे तृप्त हो सकता है ? भूतकाल में परस्त्री में लुब्ध बने अनेकों के युद्ध हुए जो सभी अब्रह्ममूलक थे । अब्रह्म का सेवन करनेवाला इसलोक में भी भयंकर अपयश का भागी बनता है और परलोक में भी दुर्गति को प्राप्त करता है ।

5) पांचवाँ परिग्रह अध्ययन– इस अध्ययन में परिग्रह का स्वरुप बताया है । परिग्रह के 30 समानार्थी नाम बताए है । समस्त देवता गण और समस्त मनुष्य इस परिग्रह के जाल में फँसे हुए है । पुरुषों की 72 कलाएँ एवं स्त्रियों की 64 कलाओं का मूल यह परिग्रह है । परिग्रह के कारण ही जीव अन्य जीवों को वध–बन्धन–क्लेश–परिताप उत्पन्न करता है और स्वयं भी वध-बन्धन आदि घोर क्लेश का कारण बनता है । लोभ के वश में जीव चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता है ।

अंत में उपसंहार करते हुए कहा है कि–जो प्राणि हिंसादि पांच आस्त्रवों का त्याग कर अहिंसादि पांच संवरों की भाव पूर्वक रक्षा करते है, वे कर्म से सर्वथा रहित होकर सर्वोत्तम सिद्धि को प्राप्त करते है ।

5 आस्त्रवों का वर्णन कर अब आगे के अध्ययनों में 5 अहिंसादि संवर द्वारों का वर्णन करते है ।

6) छठा अहिंसा अध्ययन– इस अध्ययन में पहले संवर द्वारों की महिमा बताकर अहिंसा भगवती के 60 नाम बताए है । अहिंसा की महिमा बताते हुए कहा है–यह अहिंसा भयभीत प्राणियों को शरणभूत है, प्यासे को जल समान है, भूखे को भोजन समान है, समुद्र में डुबते को बचाने में जहाज के समान है, रोगी को औषध के समान है और भव जंगल में सार्थवाह के समान है । यह अहिंसा का पथ महापुरुषों के द्वारा आचरण करके हमे बताया गया है, अतः यही आदरणीय है । अहिंसामय जीवन निर्वाह करने के लिए साधुओं को भिक्षा वृत्ति से जीवन चलाना है, अतः भिक्षा के 42 दोषों का वर्णन किया गया है । अंत में अहिंसा व्रत की 5 भावनाएँ बताई है ।

7) सातवाँ सत्य अध्ययन– इस अध्ययन में सत्य की महिमा बताते हुए कहा है, `सत्य ही स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग का प्रदर्शक है । सत्य के प्रभाव से अग्नि भी जलाती नहीं है, पानी भी बहाता नहीं है, सत्यवादी मानव वध, बंधन, सबल प्रहार और घोर वैर विरोधियों के बीच में से भी मुक्त हो जाते है । सत्य वचन में अनुरागी जनों को देवता भी सहायता करते है । सत्य के प्रभाव से मंत्र, औषधि और विद्याओं की सिद्धि होती है । सत्य ही लोक में सार है, महासागर से भी गंभीर है, सुमेरू पर्वत से भी अटल है, चन्द्र मंडल से भी सौम्य है, सूर्य मंडल से भी अधिक देदीप्यमान है । फिर संयम के विघातक 11 प्रकार के त्याज्य सत्य वचन, 10 प्रकार के सत्य वचन, एवं 16 प्रकार के वचनो का वर्णन कर सत्य महाव्रत की 5 भावनाएँ बताई है ।

8) आठवाँ अस्तेय अध्ययन – इस अध्ययन में अस्तेय अर्थात् चोरी त्याग का स्वरुप बताया है । यह व्रत सर्वज्ञ भगवंतों ने उपादेय बताया है । इस व्रत को पालन करने वाले को राजा आदि का भय नहीं रहता है और लोभ कषाय उसे स्पर्श भी नहीं करता है । इस अध्ययन में अस्तेय का आराधक और विराधक के लक्षण बताए है । अंत में आराधना का फल बताकर अस्तेय महाव्रत की 5 भावनाएं बताई है ।

9) नौवाँ ब्रह्मचर्य अध्ययन – इस अध्ययन में ब्रह्मचर्य का स्वरुप बताकर ब्रह्मचर्य को 32 विशिष्ट उपमाएं दी है । जैसे–ग्रहगण में चन्द्रमा प्रधान है, मणियों में वैडुर्य मणि प्रधान है, आभूषणों में मुकुट प्रधान है, पुष्पों में कमल प्रधान है, चन्दन में गोर्शीष चन्दन प्रधान है, नदियों में शीतोदा नदी प्रधान है, समुद्र में स्वयंभूरमण प्रधान है, वैसे समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है । सभी महाव्रतों का मूल ब्रह्मचर्य महाव्रत है । अध्ययन के अंत में इसके घातक निमित्त और रक्षक नियमों को बताकर ब्रह्मचर्य महाव्रत की 5 भावनाएं बताई है ।

10) दसवाँ परिग्रह त्याग अध्ययन – इस अध्ययन में परिग्रह त्याग की महत्ता बताते हुए श्री सुधर्मा स्वामी, अपने शिष्य श्री जंबू स्वामीजी को कहते है कि–**''जो ममत्व भाव से रहित है, इन्द्रिय संवर तथा कषाय संवर से युक्त है एवं आरंभ और परिग्रह से तथा क्रोधादि कषायों से रहित है, वही श्रमण है ।''** धर्म वृक्ष का रुपक बताकर उसमें परिग्रह त्याग को मोक्ष मार्ग के शिखर की उपमा दी है । साधुओं को उद्देशित कर संनिधि के त्याग पूर्वक दोष मुक्त कल्पनीय भिक्षा एवं उपकरणों में ममत्व त्याग का उपदेश दिया है । अंत में निर्ग्रंथ को 31 उपमाएँ देकर अपरिग्रह महाव्रत की 5 भावनाएँ बताई है ।

अंत में संवर द्वार का उपसंहार करते हुए कहा है कि–जो साधु के पांच महाव्रतों की 25 भावनाओं से युक्त है, कषाय संवर और इन्द्रिय संवर से संवृत्त है, जो प्राप्त हुए संयम योग का यत्नपूर्वक पालन करता है और अप्राप्त संयम योग की प्राप्ति के लिए यत्नशील है ऐसा विशुद्ध श्रद्धावान, संवर की आराधना करके मोक्ष प्राप्त करता है ।

संक्षेप में कहे तो इस आगम ग्रंथ में आस्त्रव द्वारों का त्याग और संवर द्वारों की आराधना के उपदेश से समस्त मोक्ष मार्ग बताया गया है ।

11

विपाक-सूत्र

द्वादशांगी का ग्यारहवाँ अंग श्री विपाक सूत्र है । प्राकृत में इसे **'विवाग सूत्तं'** के नाम से जाना जाता है । पूर्व काल में इस सूत्र का प्रमाण 18,62,32,000 पद था । वर्तमान में यह आगम मात्र 1,216 श्लोक प्रमाण उपलब्ध है । इस आगम पर नवांगी टीकाकार श्री अभयदेवसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा रचित 900 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है ।

इस सूत्र में कर्म के विपाक का वर्णन है । विपाक यानी फल । शुभ कर्म के उदय से जीवात्मा को सुख की प्राप्ति होती है और अशुभ कर्म के उदय से दुःख की प्राप्ति होती है ।

इस सूत्र में दो श्रुतस्कंध है । पहले श्रुतस्कंध का नाम **''दुःख विपाक''** है, एवं दूसरे श्रुतस्कंध का नाम **'सुख विपाक'** है । दोनों में 10-10 अध्ययन है । पहले श्रुतस्कंध के अध्ययनो के नाम क्रमशः इस प्रकार है–1) मृगापुत्र, 2) उज्झितक, 3) अभग्नसेन 4) शकट 5) बृहस्पतिदत्त 6) नंदिवर्धन 7) उंबरदत्त 8) शौरिकदत्त 9) देवदत्ता 10) अंजू । दूसरे श्रुतस्कंध के अध्ययनों के नाम इस प्रकार है–1) सुबाहुकुमार 2) भद्रनन्दी 3) सुजातकुमार 4) सुवासवकुमार 5) जिनदास 6) धनपति 7) महाबल 8) भद्रनन्दी 9) महाचन्द्र 10) वरदत्त ।

दुःख और सुख के विपाको को बताने वाला यह आगम ग्रंथ धर्मकथानुयोग का है । मृगापूत्र आदि 10 कथाएँ अत्याचार, हिंसा, अन्याय, वेश्यागमन, प्रजा का शोषण, रिश्वतखोरी, यज्ञ में प्राणिहिंसा, शिकार, मांसभक्षण आदि पाप कार्य के कटू परिणाम बताती है । `पाप कर्म की सजा कितनी भयानक होती है ।' यह संदेश हमे पाप कर्म करते समय सावधान बनाता है । क्षण भर की मजा के लिए किया गया पाप कर्म कितनी बड़ी और भयंकर सजा देता है–यह चिंतन हमे पाप कर्म से बचने की प्रेरणा देता है । हस्ते–हस्ते किये हुए पाप कर्म की सजा, रो–रोकर

भी पूरी नहीं होती है । इस विषय पर पहले अध्ययन में बताए **मृगापुत्र** का दृष्टांत देखते है–

पृथ्वी तल को पावन करते हुए भगवान महावीर अपने पूरे परिवार के साथ मृगाग्राम में पधारे । वहाँ एक जन्मांध व्यक्ति को देखकर प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी ने भगवान से जन्मांध व्यक्ति का स्वरुप पूछा । तब भगवान ने विजय राजा एवं मृगारानी का पुत्र मृगापुत्र का स्वरुप बताया । वह मृगापुत्र जन्म से ही अंध था । न तो उसे हाथ थे, न पैर थे । पूर्ण रूप से अपाहिच, बहरा, मुंगा, शरीर के सभी अवयवों से रहित मात्र एक मांस का पींड था ।

भगवान के मुख से मृगापुत्र का वर्णन सुनकर गौतम स्वामी उसे देखने स्वयं उसके घर पहुंचे । मृगारानी गुप्त रुप से उसको पालन करती थी । पधारे हुए गौतमस्वामी को देखकर मृगारानी हर्षित हुई । पुत्र दर्शन की मांग को सुनकर पहले तो मृगारानी ने अपने अन्य चार पुत्रों को वस्त्र–आभूषणों से अलंकृत कर गौतम स्वामी को नमस्कार कराते हुए पुत्र के रूप में परिचय करवाया । तब गौतम स्वामी ने उसे अपने ज्येष्ठ पुत्र–मृगापुत्र को बताने का निर्देश किया । मृगापुत्र के गुप्त रहस्य का प्रकट होने पर मृगारानी को आश्चर्य हुआ । तब मृगापुत्र के भोजन का समय जानकर वह भोजन की सामग्री के साथ गौतमस्वामी को भूमिगृह में ले गई । वहाँ जाते मृगारानी ने गौतमस्वामी को मुंह पर मुख-वस्त्रिका बांधने की विनंती की । फिर जैसे ही उसने गर्भगृह खोला, उसमें से भयंकर दुर्गंध निकलने लगी ! वह दुर्गंध सडे–गले पशु के कलेवर से भी ज्यादा दुर्गंधी थी ।

अंदर जाकर गौतमस्वामी ने, भगवान महावीरस्वामी से ज्ञात हुए उसके शरीर के वृत्तांत को स्पष्ट देखा । मृगारानी ने उसके मुंह में भोजन दिया । भोजन देने पर मृगापुत्र ने उसे शीघ्र ही ग्रहण कर लिया । तत्काल वह आहार–मवाद और रुधिर के रुप में परिवर्तित हो गया । फिर उसने उस मवाद और रुधिर का वमन किया और पुनः उसी वमन को भी खा गया ।

मात्र एक मांसपिंड के एकेन्द्रिय समान पंचेन्द्रिय मनुष्य की नारक के जैसी हालत देख गौतमस्वामी विस्मयचित्त हो गए ।

गौतमस्वामी ने भगवान महावीर स्वामी को इसके दुःखों का कारण पूछा । भगवान ने मृगापुत्र के पूर्व भव का वृत्तांत बताते हुए कहा–

भारत वर्ष में राजा के प्रतिनिधि विजय वर्द्धमान नाम के खेट (छोटा नगर) का शासक **इक्काई** नाम का राष्ट्रकूट (राठौड) था । वह अत्यंत ही अधर्मी, प्रजाशोषक, अधम शासक था । प्रजा का शोषण करना, रिश्वत लेना, निरपराधी जनता पर झूठे आरोप लगाकर तंग करना इनमें वह अपनी शान मानता था । दिन–रात पाप प्रवृत्ति में तल्लीन रहने से पापों के तत्काल फल स्वरूप उसके शरीर में सोलह असाध्य रोग पैदा हुए । अंत में अत्यंत दीन भाव से हाय–हाय करते हुए मरकर पहली नरक में पैदा हुआ । वहाँ लंबे काल तक नरक की वेदना को सहन करते हुए, आयुष्य पूर्ण कर मृगापुत्र के रुप में पैदा हुआ है ।''

अतीत को जानने के बाद जब गौतम स्वामी ने उसके भविष्य के विषय में पूछा तब भगवान ने बताया, **''वह यहाँ से मरकर पहली नरक में जाएगा । वहाँ से सिंह, फिर पहली नरक, सरीसर्प तिर्यंच, दूसरी नरक, पक्षी, तीसरी नरक, सिंह, चौथी नरक, उरग जाति का तिर्यंच, पांचवी नरक, मनुष्य स्त्री, छठी नरक, मनुष्य पुरुष, सातवीं नरक, लाखों बार जलचर, चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प, खेचर तिर्यंच में, फिर चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय एवं एकेन्द्रिय में लाखों बार उत्पन्न होकर दीर्घ काल तक संसार में परिभ्रमण करेगा । इस प्रकार प्रत्येक जन्म में अपार कष्टों को सहकर बैल के रुप में जन्म लेगा, वहाँ वेदनाएँ सहन कर अंत में मनुष्य भव की प्राप्ति होगी । मनुष्य भव में संयम की साधना करके मोक्ष में जाएगा ।''**

इस प्रकार मृगापुत्र के दृष्टांत से पाप के विपाक को बताया । अन्य 9 अध्ययनों में भी इसी तरह प्रभु वीर के साथ गौतमस्वामी विचरण करते, तब गोचरी के मार्ग में दुःख से व्याप्त जीवों को देखकर व्यथित हो जाते । बाद में प्रभु वीर के पास आकर उनके दुःखो का कारण पूछते । तब त्रिकाल ज्ञानी प्रभुवीर उन–उन जीवों के भूतकाल में किये पापकर्म, वर्तमान की दुर्दशा एवं भविष्य में होने वाली पीड़ा का वर्णन करते । दस

अध्ययनों में पहले 8 अध्ययनों के पात्र पुरुष है एवं 9 वें और 10 वें अध्ययन के पात्र स्त्री है । श्रुतस्कंध में दुःख के विपाक को बताकर पाप त्याग का उपदेश दिया ।

तत्पश्चात् दूसरे श्रुतस्कंध में सुबाहुकुमार आदि 10 पुण्यात्माओं के जीवन चरित्र बताए है । धर्म कार्य में प्रेरणा स्त्रोत सुबाहुकुमार का चरित्र इस प्रकार है–

हस्तिशीर्ष नाम के नगर के राजा अदीनशत्रु को धारिणी आदि एक हजार रानियां थी । एक बार धारिणी देवी ने सिंह स्वप्न से सूचित पुत्ररत्न को जन्म दिया । माता–पिता ने उसका सुबाहु कुमार नामकरण किया । यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने पर माता–पिता ने 500 श्रेष्ठ राजकुमारियों के साथ विवाह करवाया एवं 500 ऊँचे भव्य और सुंदर महलों का निर्माण करवाया । उनके मध्य में सुबाहुकुमार का विशाल भवन था । उस सुन्दर भवन में स्थित सुबाहुकुमार दिव्य सुखों का अनुभव करते हुए रहता था ।

उस समय पृथ्वीतल को पावन करते हुए भगवान महावीर उस नगर में पधारे । राजा अदीनशत्रु अपने पुत्र सुबाहुकुमार आदि पूरे परिवार के साथ प्रभु की धर्मदेशना श्रवण करने आया । प्रभु की भवनिर्वेदिनी और मोक्ष संवेगिनी धर्म देशना सुनकर, अपने आप को सर्वविरति के लिए असमर्थ मानता हुआ देशविरति धर्म का स्वीकार कर पुनः अपने नगर में चला गया ।

तब सुबाहुकुमार की पुण्य समृद्धि को देख गौतमस्वामी ने प्रभु से इसका कारण पूछा–तब भगवान ने बताया कि `पूर्व भव में यह हस्तिनापुर में सुमुख नाम का धनवान गाथापति था । एक बार उनके नगर में धर्मघोष स्थविर अपने परिवार के साथ आये । उनके परिवार में से मासक्षमण के तपस्वी सुदत्त अणगार भिक्षा भ्रमण करते उनके घर पधारे । सुमुख गाथापति ने अत्यंत हर्ष और भक्तिभाव के साथ तपस्वी महात्मा की उत्तम द्रव्यों से भक्ति की । तब देवताओं ने वहाँ पंचदिव्य प्रकट किये । कालक्रम से आयुष्य का पूर्ण कर सुबाहुकुमार के रुप में पैदा हुआ है ।'

नगर मे जाने के बाद सुबाहुकुमार प्रभु वीर के पास से स्वीकार

किये अणुव्रतों का दृढता से पालन करता है। पर्वतिथिओं में पौषध व्रत स्वीकार करता है ।

पौषध व्रत में रहते हुए एक बार मध्यरात्रि में उन्हें विचार आया कि विचरण करते हुए यदि भगवान महावीर यहाँ पधारे तो मैं उनके पास दीक्षा स्वीकार करुं। तब भगवान महावीर भी अपने ज्ञान से उसके संकल्प को जानकर वहाँ पधारे । माता–पिता की अनुमति लेकर सुबाहुकुमार ने भगवान के पास दीक्षा स्वीकार की । ग्यारह अंग का अभ्यास कर छट्ठ-अट्ठम आदि तप करके अंत में 29 उपवास से अनशन स्वीकार किया । अंत में समाधि मरण प्राप्त कर सौधर्म देवलोक में देव बना । फिर मनुष्य और देव के भव प्राप्त कर सवार्थ सिद्ध विमान से च्यवकर मनुष्य बनकर मोक्ष में जाएगा ।

इस प्रकार पहले अध्ययन में सुबाहुकुमार का विस्तार से चरित्र बताकर शेष अध्ययनो में अति संक्षेप से शेष 9 पुण्यात्माओं का दानादि धर्म के प्रभाव से प्राप्त हुए भौतिक और आत्मिक सुख का वर्णन किया है ।

''दृष्टिवाद''

द्वादशांगी का बारहवाँ अंग दृष्टिवाद है। प्राकृत में इसे **'दिट्ठिवाओ'** के नाम से जाना जाता है । इसमें पाँच विभाग है–

(1) परिकर्म – दृष्टिवाद का यह पहला विभाग है, जो आगे के चार विभागों को पढने की योग्यता प्रदान करने वाला शास्त्र है । इसके मुख्य 7 भेद एवं 83 प्रतिभेद है ।

(2) सूत्र – इसके मूलभेद 22 और उत्तरभेद 88 है। जिनमें छिन्न छेदनय से जैन दृष्टि से 22 भेद, अछिन्न छेदनय से आजीवक दृष्टि से 22 भेद, द्रव्यास्तिक, पर्यायास्तिक और उभयास्तिक–इन तीन त्रैराशिक आजीवक की दृष्टि से 22 भेद एवं संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र तथा शब्द–इन चार नय से जैनदृष्टि से 22 भेद–इस प्रकार कुल 88 भेद होते है ।

(3) 14 पूर्व – इसके मूल भेद 14 है और 225 वस्तुएँ है। इनका प्रमाण । महाविदेह क्षेत्र के 16,383 हाथी प्रमाण सुखी स्याही से लिखा जाय उतना होने से अत्यंत विशाल है। इनका वर्णन इस प्रकार है :–

14 पूर्व

1) उत्पाद पूर्व :– इसमें उत्पत्ति के आधार पर सभी द्रव्य–पर्यायों की प्ररूपणा की गयी है। पद संख्या – 11 करोड ।

2) अग्रायणीय पूर्व :– इसमें सभी द्रव्य–पर्याय और जीवों का परिमाण कहा गया है । पद संख्या – 96 लाख ।

3) वीर्य प्रवाद पूर्व :– इसमें सभी जीव–अजीवों के वीर्य का वर्णन है । पद संख्या – 70 लाख ।

4) अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व :– इसमें लोक में रहे धर्मास्तिकाय आदि और नहीं रहे पदार्थ–जैसे गधे के सींग आदि बताए है । अथवा स्याद्ववाद की अपेक्षा से सभी वस्तुए अपने स्वरूप से है, और अन्य स्वरूप से नहीं है, यह बताया है । पद संख्या – 60 लाख।

5) ज्ञान प्रवाद पूर्व :– इसमे पांच ज्ञान के भेद–प्रभेद आदि बताए है । पद संख्या – 1 करोड में 1 कम ।

6) सत्यप्रवाद पूर्व :– इसमे संयम अथवा सत्यवचन के भेदों को प्रतिपक्ष के साथ बताये है । पद संख्या 1 करोड और 6 पद ।

7) आत्म प्रवाद पूर्व :– इसमें अनेक नयों से जीवों की प्ररूपणा की गई है । पद संख्या – 36 करोड पद ।

8) समय प्रवाद पूर्व (मतांतर से – कर्म प्रवाद) :– इसमें कर्म का स्वरूप, भेद–प्रभेद आदि बताये है । पद संख्या – 1 करोड 80 लाख ।

9) प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व :– इसमें सभी पच्चक्खाणों के स्वरूप और भेद बताये है । पद संख्या – 84 लाख ।

10) विद्या प्रवाद पूर्व :– इसमें अनेक प्रकार की विद्या साधनाएँ और सिद्धियाँ बतायी है । पद संख्या – 11 करोड 15 हजार ।

11) अवंध्य पूर्व (मतांतर से कल्याण पूर्व) :– इसमें सभी ज्ञान, तप आदि संयोगों के शुभ फल और प्रमाद आदि के अशुभ फलों को बताये है । पद संख्या – 26 करोड ।

12) प्राणायु पूर्व :– इसमें जीवों के प्राण आयुष्य का अनेक प्रकार से वर्णन है । पद संख्या – 1 करोड 56 लाख ।

13) क्रिया विशाल पूर्व :– इसमें कायिकी आदि क्रियाओं का विस्तार से वर्णन है । पद संख्या – 9 करोड ।

14) लोक बिंदुसार पूर्व :– यह सभी प्रकार की अक्षर रचनाओं का ज्ञान करानेवाली सर्वाक्षर सान्निपात लाब्धि का कारण है । इस कारण यह पूर्व, लोक में और श्रुत में अक्षर पर रहे बिंदु के समान सर्वोत्तम है । पद संख्या – 12 करोड 50 लाख ।

यहाँ बताए पद संख्या से भी समवायांग सूत्र की टीका में बताए पद संख्या में भेद है ।

तीर्थंकर परमात्मा ने गणधर भगवंतो को सबसे पहले इन पूर्वो में रहे सूत्र के अर्थ बताये थे, इसलिए इन्हें पूर्व कहा जाता है । अथवा मतांतर से कहते है कि ``गणधरों ने पहले पूर्वो की रचना की और बाद में आचारांग आदि अंगो की रचना की थी ।'' इसलिए इन्हें पूर्व कहा जाता है ।

``नमोस्तु वर्धमानाय''** और **``विशाल लोचन दलं'' ये दोनो महावीर स्वामी की स्तुतियाँ 14 पूर्वी में से उद्धरित होने से इन्हें स्त्रियों को पढने का अधिकार नहीं है ।

(4) चूलिका – 4 पूर्व की क्रमशः 4, 12, 8 और 10 इस प्रकार से कुल 34 चूलिकाएँ है ।

(5) अनुयोग – इसमें तीर्थंकरों के 52 बोलपूर्वक चरित्र, 7 कुलकर, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, दशार्ह, बलदेव, वासुदेव, पूर्वधर, तपस्वी और हरिवंश आदि की गंडिकाएँ है ।

वर्तमान में दृष्टिवाद नाम का यह बारहवाँ अंग लुप्त हो चूका है । आचारांग से लेकर दृष्टिवाद के बारह अंग को ही द्वादशांगी रूप में कहा जाता है ।

12 उपांग

जैसे शरीर में मस्तक, हाथ, पैर आदि अंग कहलाते है और हाथ–पैर की अंगुलियाँ आदि उपांग कहलाते है, वैसे ही आगमों में आचारांग आदि बारह अंग कहलाते है और उन एक एक अंग पर एक एक उपांग है ।

12 अंग पर 12 उपांग

अंग		उपांग
1) श्री आचारांग सूत्र	–	श्री औपपातिक सूत्र
2) श्री सूत्रकृतांग सूत्र	**–**	**श्री राजप्रश्नीय सूत्र**
3) श्री स्थानांग सूत्र	–	श्री जीवाभिगम सूत्र
4) श्री समवायांग सूत्र	**–**	**श्री पन्नवणा सूत्र**
5) श्री भगवती सूत्र	–	श्री सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र
6) श्री ज्ञाताधर्म कथा सूत्र	**–**	**श्री जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र**
7) श्री उपासक दशांग सूत्र	–	श्री चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र
8) श्री अंतकृत् दशांग सूत्र	**–**	**श्री निरयावलिका सूत्र**
9) श्री अनुत्तरोपपातिक सूत्र	–	श्री कल्पावतंसिका सूत्र
10) श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र	**–**	**श्री पुष्पिका सूत्र**
11) श्री विपाक सूत्र	–	श्री पुष्पचूलिका सूत्र
12) श्री दृष्टिवाद सूत्र	**–**	**श्री वह्निदशा सूत्र**

बारहवाँ अंग–दृष्टिवाद सूत्र लुप्त हो चुका है, फिर भी उस पर रचित श्री वह्निदशा सूत्र हमें प्राप्त होता है ।

इन बारह उपांग की रचना को देखकर लगता है कि इनकी रचना चौदह पूर्वधर–दसपूर्वधर आदि विशिष्ट श्रुतज्ञानियों ने की होगी परंतु रचनाकार का नामोल्लेख नहीं है, मात्र चौथे उपांग श्री पन्नवणा सूत्र के रचयिता श्री श्यामाचार्य भगवंत का उल्लेख मिलता है, जिनका स्वर्गवास (कालधर्म) वीर संवत–376 वर्ष में हुआ था ।

12

श्री औपपातिक सूत्र

श्री औपपातिक सूत्र प्रथम उपांग है । प्राकृत भाषा में इस सूत्र का नाम **''उववाय सूत्त''** है । इसमें मूलसूत्र–**1167** श्लोक प्रमाण है, जिसपर नवांगी टीकाकार श्री अभयदेव सूरीश्वरजी म.सा. द्वारा विरचित 3125 श्लोक प्रमाण टीका है । कुल मिलाकर 1167 + 3125 =4292 श्लोक प्रमाण साहित्य वर्तमान में उपलब्ध है ।

इस सूत्र में उपपात को लक्ष्य में रख कर पदार्थो का स्वरूप बताया है । उपपात अर्थात–देव-नारक आदि जीवों का जन्म अथवा मोक्ष में जाना । ग्यारह अंग में जहाँ भी नगरी, राजा, वनखंड, प्रभु और प्रभु की देशना आदि का वर्णन किया है वहाँ अधिकतर **''जहा उववाइए''** अर्थात्–औपपातिक सूत्र में जैसा वर्णन किया है वैसा वर्णन जानने इस सूत्र का निर्देश किया गया है ।

❀ पृथ्वीतल को पावन करते हुए जिस एक दिन भगवान महावीर स्वामी चंपापूरी नगरी में पधारे थे, उस दिन की अनेक घटनाएं इस सूत्र में है । प्रारंभ में चंपापूरी नगरी एवं प्रजाजनों की समृद्धि का वर्णन है । फिर श्रेणिक राजा के पुत्र कोणिक राजा द्वारा प्रभु की नमुत्थूणं सूत्र से स्तवना एवं देव–इन्द्र के लिए भी आश्चर्य कारक और भक्त हृदय के लिए आदर्श समान कोणिक राजा के द्वारा किये गए प्रभु के भव्य सामैये का वर्णन किया है ।

भवनपति–व्यंतर–ज्योतिष और वैमानिक निकाय के देवों द्वारा निर्मित प्रभु के समवसरण में पधारे प्रभु के गुण सौन्दर्य एवं उनके तप–त्याग का वर्णन है ।

35 गुणों से विभूषित योजनगामी प्रभु की धर्म देशना में लोक–अलोक का स्वरुप, चार गतियों के कारण, छह जीव निकाय, साधु धर्म और

श्रावक धर्म का निरुपण किया है । धर्म देशना से प्रतिबोध पाये जीवों ने यथाशक्ति समकित, देश विरति, सर्व विरति आदि का स्वीकार किया ।

देशना के पश्चात् प्रथम गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम स्वामी ने प्रभु को 21 प्रश्न पूछे । जिसके संतोष जनक उत्तर प्रभु ने दिये । जिसमें मुख्य रुप से अंबड परिव्राजक और उनके 700 शिष्य द्वारा स्वीकार किये पांच अणुव्रत, उनका पालन, अंतिम संलेखना, देव भव प्राप्ति और आगामी भव में मोक्ष प्राप्ति का निर्देश किया है ।

ग्रंथ के अंतिम चरण में निह्नव, परिव्राजक, आजीवक ऋषी, अल्पारंभी आदि जीव मर कर किस गति में उत्पन्न होते है इसका निर्देश होने से सूत्र का नाम औपपातिक सूत्र है ।

अंत के 22 श्लोक द्वारा मोक्ष में जानेवाले जीवों के केवली समुद्घात का वर्णन कर सिद्धावस्था का स्वरुप बताया है ।

13

राजप्रश्नीय सूत्र

श्री राजप्रश्नीय सूत्र दूसरा उपांग है । प्राकृत भाषा में इस सूत्र का नाम **``रायपसेणी सूत्र''** है । 85 सूत्रों में विभक्त इस आगम के मूलसूत्र 2120 श्लोक प्रमाण है । जिसपर पूज्य आचार्य श्री मलयगिरिजी द्वारा विरचित 3700 श्लोक प्रमाण टीका उपलब्ध है । कुल मिलाकर इस सूत्र पर 2120 +3700= 5820 श्लोक प्रमाण साहित्य वर्तमान में उपलब्ध है ।

इस सूत्र में तेइसवें श्री पार्श्वनाथ भगवान के शासन में हुए केशी गणधर को प्रदेशी राजा द्वारा पुछे गए दस प्रश्नों का वर्णन मुख्य होने से इसका नाम राज प्रश्नीय है ।

प्रदेशी राजा के रुप में पूर्व भव, सूर्याभ देव के रूप में वर्तमान भव, तथा आगामी भव में महाविदेह क्षेत्र से दृढप्रतिज्ञ नाम के राजकुमार बनकर दीक्षा से सर्वकर्म क्षय कर मोक्ष प्राप्ति तक के तीनों भवों का निर्देश किया है ।

भव्य जीवों को प्रतिबोध देते, अष्ट प्रातिहार्य की समृद्धि के साथ भगवान महावीर स्वामी **आमलकप्पा** नाम की नगरी में पधारे । वहाँ के **राजा श्वेत** अपनी **धारिणी** रानी आदि विशाल परिवार के साथ प्रभु की धर्म देशना का श्रवण करने समवसरण में आए ।

उस समय अवधिज्ञान से जंबुद्वीप के भरतक्षेत्र में आमलकप्पा नगरी में प्रभु को जानकर, प्रभु महावीर के दर्शन करने के लिए विशाल समृद्धि के साथ **सूर्याभ देव** भी वहाँ आया । धर्म देशना का श्रवण कर अंत में उसने प्रभु से अपनी आत्मा के विषय में प्रश्न किये–

हे प्रभु ! क्या मैं भव्य हूँ या अभव्य हूँ ?
क्या मैं सम्यग्दृष्टि हूँ या मिथ्यादृष्टि हूँ ?
क्या मैं अनंत संसारी हूँ या अल्प संसारी हूँ ?
क्या मैं सुलभबोधि हूँ या दुर्लभबोधि हूँ ?
क्या मैं आराधक हूँ या विराधक हूँ ?
उसकी जिज्ञासा को जानकर प्रभु ने कहा–**``तू भव्य है, सम्यग्**

दृष्टि है, अल्प संसारी है, सुलभ बोधि है और आराधक है । इस भव के बाद अंतिम मनुष्य भव करके तुम मोक्ष प्राप्त करोगे ।''

अपने मोक्ष को समीप जानकर प्रसन्न बने उसने प्रभु के पास संगीत–नृत्य और नाटक करने की अनुमति मांगी । भगवान मौन रहे । भगवान के मौन को सम्मति मानकर उसने 32 नाटक किये, जिसमें अंत में प्रभु के च्यवन आदि पांच कल्याणकों का प्रत्यक्ष दृश्य खडा किया । इस प्रकार प्रभु की भक्ति करके सूर्याभ देव अपने देवलोक में गया ।

तत्पश्चात् प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी ने प्रभु से सूर्याभदेव का परिचय पूछा । उत्तर देते हुए प्रभु ने कहा, **''यह देव सौधर्म देवलोक के सौधर्मावतंसक नाम के मुख्य विमान का महाऋद्धिवाला देव है । सूर्याभ विमान में रहने से उसका नाम सूर्याभदेव है ।''** फिर उसके विमान में वनखंड, जलाशय, क्रीडा स्थान, प्रासाद, पद्मवर वेदिका, सुधर्मा सभा, चैत्यवृक्ष, जिनप्रतिमा, श्री जिनेश्वर की दाढा, शस्त्रभंडार, सिद्धायतन, 108 जिनप्रतिमा, यक्ष प्रतिमा, 108 घंट, उपपात सभा, अभिषेक सभा, अलंकार सभा, व्यवसाय सभा आदि है, जिसमें सूर्याभदेव ने शाश्वत जिनप्रतिमा की पूजा की, उसका स्पष्ट उल्लेख है ।

पुनः गौतम स्वामी ने प्रश्न किया, 'हे प्रभो ! इसे प्राप्त हुई इतनी ऋद्धि का कारण क्या है ?' तब उत्तर देते प्रभु ने पूर्व भव के रूप में प्रदेशी राजा का वर्णन किया ।

प्रदेशी राजा परम नास्तिक था । धर्म क्रिया को ढोंग मानकर धर्म की मजाक उडाता था । एक बार उद्यान में विराजित श्री केशी गणधर का संग हुआ । आत्मा आदि के विषय में अपनी शंकाओं के रूप में 10 प्रश्न किये । केशी गणधर ने स्पष्टता से उसकी शंकाओं का समाधान दिया जिससे वह परम आस्तिक व्रतधारी श्रावक बना ।

उसके व्रत नियमों से अप्रसन्न सूर्यकांता रानी ने उपवास के पारणे में उसे जहर देकर मार दिया । रानी के द्रोह करने पर भी समता भाव रखकर वह सूर्याभ देव बना है । चार पल्योपम का देवायु पूर्ण कर वह महाविदेह क्षेत्र में दृढप्रतिज्ञ राजकुमार बनेगा । दीक्षा लेकर मोक्ष में जाएगा ।

इस प्रकार नास्तिक से आस्तिक बने प्रदेशी राजा के नास्तिक मत का खंडन करने वाली युक्ति प्रयुक्तियाँ इस आगम ग्रंथ में है ।

14

जीवाजीवाभिगम सूत्र

श्री जीवाभिगम तीसरा उपांग सूत्र है । इसे **जीवाजीवाभिगम सूत्र** भी कहते है । इसमें मूल सूत्र 4700 श्लोक प्रमाण है, जिसपर 1500 श्लोक प्रमाण चूर्णि उपलब्ध है । पूज्य आचार्य श्री हरिभद्र सूरीश्वरजी द्वारा इस ग्रंथ के कठिन पदों का वर्णन करती 1192 श्लोक प्रमाण प्रदेश वृत्ति नाम की टीका रची थी, जो प्रायः छपी नहीं है । उसके आधार से पूज्य आचार्य श्री मलयसूरीश्वरजी म.सा. ने 14000 श्लोक प्रमाण विस्तृत टीका की रचना की है । जीव–अजीव का विशेष बोध=अभिगम जिससे प्राप्त हो वह जीवाजीवाभिगम सूत्र है । इस आगम में द्रव्यानुयोग की प्रधानता है ।

इस ग्रंथ में पदार्थों का वर्णन प्रश्नोत्तर के रूप में किया गया है । जैसे राजप्रश्नीय उपांग में सूर्याभ देव का वर्णन है वैसे इस उपांग में **विजयदेव** का विस्तार से वर्णन है । 272 सूत्रों में विभक्त इस आगम में मुख्य नौ विभाग है, जिसे प्रतिपत्ति कहते है । इन नौ प्रतिपत्तिओं में जीवों के क्रमशः दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ और दस भेदों का वर्णन किया है ।

- पहली प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के त्रस और स्थावर रूप दो भेद बतलाए है ।
- **दूसरी प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के स्त्रीवेद, पुरूषवेद और नपुंसक वेद रूप तीन भेद बतलाए है ।**
- तीसरी प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव रूप चार भेद बतलाए है ।
- **चौथी प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय रूप पांच भेद बतलाए हैं ।**

• पाँचवी प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस काय रूप छह भेद बतलाए हैं ।

• छठी प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के नारक, तिर्यंच, तिर्यंच स्त्री, मनुष्य, मनुष्यस्त्री, देव और देवी रूप सात भेद बतलाए हैं ।

• सातवीं प्रतिपत्ति में चार गति के जीवों को प्रथम समय और अप्रथम समय की अपेक्षा करके आठ भेद बतलाए हैं ।

• आठवीं प्रतिपत्ति में संसारी जीवों के पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रूप में नौ भेद बतलाए हैं ।

• नौंवी प्रतिपत्ति में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों के पांच भेदों को प्रथम समय और अप्रथम समय की अपेक्षा से भेद कर दस भेद बतलाए हैं ।

अंत में सिद्ध–असिद्ध, सेन्द्रिय–अनिन्द्रिय, ज्ञानी–अज्ञानी, आहारक–अनाहारक, भाषक–अभाषक, सम्यग्दृष्टि–मिथ्यादृष्टि, परित्त–अपरित्त, सुक्ष्म–बादर, संज्ञी–असंज्ञी, पर्याप्त–अपर्याप्त के भेदों से जीवों का स्वरूप बताया है ।

इस आगम में लौकिक, सामाजिक, भौगोलिक एवं अंतरिक्ष संबंधी विस्तृत वर्णन किया है ।

वादिवेताल श्री शांतिसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा रचित जीवविचार तथा अनेक जीवादि पदार्थों का निरूपण करने वाले प्रकरण ग्रंथों की रचना का मूल स्त्रोत यह जीवाजीवाभिगम सूत्र है ।

15

श्री प्रज्ञापना सूत्र

श्री प्रज्ञापना सूत्र चौथा उपांग है । प्राकृत भाषा में इस सूत्र का नाम **'पन्नवणा सूत्र'** है । 349 सूत्रों में विभक्त इस आगम के मूलसूत्र **7787 श्लोक** प्रमाण है । जिसपर पूज्य आचार्य श्री हरीभद्रसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा विरचित **''प्रदेश व्याख्या''** नामकी 3728 श्लोक प्रमाण वृत्ति (टीका) है । तथा कठिन पदार्थों का बोध देने वाली इस `प्रदेश व्याख्या' नाम की लघुटीका के आधार पर पूज्य आचार्य श्री मलयगिरिजी द्वारा रचित 16,000 श्लोक प्रमाण विस्तृत टीका भी है । इससे अतिरिक्त इस आगम सूत्र पर श्री कुलमंडण गणि म.सा. द्वारा रचित `अवचूरी' उपलब्ध है तथा नवांगी टीकाकार पूज्य आचार्य श्री अभयदेवसूरीश्वरजी म.सा. ने 133 श्लोक प्रमाण `श्री प्रज्ञापना तृतीयपद संग्रहणी' नाम का ग्रंथ रचा है, जिसमें अल्पबहुत्व का विस्तार से वर्णन किया है ।

प्रज्ञापना शब्द का अर्थ है–प्र=प्रकर्ष से ज्ञापना=जानना । जिस सूत्र के द्वारा जैन शासन के मुख्य पदार्थों का अच्छी तरह से बोध होता है, वह यह प्रज्ञापना सूत्र है । वर्तमान में विद्यमान ग्यारह अंगो में पंचमांग श्री भगवती सूत्र सबसे बड़ा है वैसे ही बारह उपांगो में यह श्री प्रज्ञापना सूत्र सबसे बड़ा है । इसलिए इस आगम को `लघु भगवती सूत्र' और `लघु विश्वकोश' भी कहते है ।

द्रव्यानुयोग के पदार्थों का अतिगहन विवरण होने से यह आगम दृष्टिवाद का सार है । इस उपांग की रचना श्री सुधर्मास्वामीजी की 23 वीं पाट परंपरा पर हुए श्री श्यामाचार्यजी भगवंत ने की है । पूज्य **श्यामाचार्यजी भगवंत,** प्रशमरति–तत्त्वार्थ सूत्र आदि 500 धर्मग्रंथ के रचयिता वाचकवर्य **श्री उमास्वातिजी महाराज के शिष्य** है तथा वे श्री **कालकाचार्य** के नाम से भी प्रसिद्ध है ।

इस महाआगम के 36 विभाग है, जो पद कहलाते है । 36 पदों के नाम इस प्रकार है –

1. प्रज्ञापना पद, 2. स्थान पद, 3. अल्पबहुत्व पद, 4. स्थिति पद, 5. पर्याय पद, 6. व्युत्क्रांति पद, 7. उच्छ्वास पद, 8. संज्ञा पद, 9. योनि पद 10. चरम पद, 11. भाषा पद, 12. शरीर पद, 13. परिणाम पद, 14. कषाय पद, 15. इन्द्रिय पद, 16. प्रयोग पद, 17. लेश्या पद, 18. कायस्थिति पद, 19. सम्यक्त्व पद, 20. अंतक्रिया पद, 21. अवगाहन पद, 22. क्रिया पद, 23. कर्मप्रकृति पद, 24. कर्मबंध पद, 25. कर्मवेद पद, 26. कर्मवेदबंध पद, 27. कर्मप्रकृति पद, 28. आहार पद, 29. उपयोग पद, 30. पश्यत्ता पद, 31. संज्ञा पद, 32. संयम पद, 33. अवधि पद, 34. प्रविचारणा पद, 35. वेदना पद, 36. समुद्घात पद ।

पूज्य उमास्वातिजी महाराज की परंपरानुसार मुख्य रुप से जीवादि सात तत्त्वों का निरुपण इन 36 पदों में किया गया है । जिनमें 1, 3, 5, 10 और 13 वें पदों में जीव तत्त्व और अजीवतत्त्व का वर्णन है । 16 और 22 वे पदों में आश्रव तत्त्व का वर्णन है । 23 वें पद में बंध तत्त्व का वर्णन है और 36 वें पद में संवर तत्त्व, निर्जरा तत्त्व और मोक्ष तत्त्व का वर्णन है । अन्य पदों में भी विभिन्न विषयों का विस्तार से वर्णन है ।

पंचमांग श्री भगवती सूत्र के समान इस उपांग में भगवान महावीर स्वामी को प्रथम गणधर गौतम स्वामी द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर है । प्रश्नोत्तर के रुप में यह ग्रंथ तत्त्वों का खजाना है । **``वर्तमान में कहलाते वैज्ञानिको के संशोधनों की सूक्ष्मता, सर्वज्ञ परमात्मा के केवलज्ञान से प्रकाशित सूक्ष्मता के सामने कुछ भी नहीं है''**–ऐसा स्पष्ट बोध इस आगम से होता है ।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में नवतत्त्वों के प्रति श्रद्धा अति महत्त्वपूर्ण है । ऐसे नवतत्त्व आदि अनेक प्रकरण ग्रंथों की रचना का मूल स्त्रोत यह उपांग है ।

16-17

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र-चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र

श्री सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र पाँचवां उपांग है एवं **श्री चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र** सातवां उपांग है । प्राकृत भाषा में इन सूत्रों के नाम **'सूर पन्नति'** और **'चन्द पन्नति'** है । 2200 श्लोक प्रमाण मूल सूत्र वाले इन दोनों आगमों में 108 गद्य सूत्र, 103 पद्य गाथाएँ, एक अध्ययन और 20 प्राभृत है । श्री सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र पर निर्युक्तिकार श्री भद्रबाहु स्वामी द्वारा विरचित निर्युक्ति थी, जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं है । श्री मलयगिरिजी द्वारा रचित 9500 श्लोक प्रमाण टीका वर्तमान में उपलब्ध है ।

प्राचीन काल में ये दोनों उपांग, एक आगम रुप ``श्री ज्योतिष गणराज प्रज्ञप्ति'' नाम से प्रसिद्ध था । यह आगम श्वेतांबर और दिगंबर संप्रदाय को मान्य रहा है तथा अति प्राचीन है । वर्तमान में दोनों अलग अलग उपांग के रुप में गिने जाते है । जिसमें श्री सूर्य प्रज्ञप्ति पंचमांग श्री भगवती सूत्र का उपांग होने से पाँचवा उपांग है और श्री चन्द्र प्रज्ञप्ति सातवें श्री उपासक दशांग सूत्र का उपांग होने से साँतवा उपांग है ।

ये दोनों उपांगों में अंतरिक्ष विज्ञान (खगोल) का विषय होने से इनमें गणितानुयोग की प्रधानता है । सूर्य-चन्द्र और ज्योतिष चक्र का विवरण करने वाले मात्र ये दो ही आगम है ।

इन दोनों सूत्रों में सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-तारा आदि की गति तथा ज्योतिष विमानों का वर्णन है । वैज्ञानिकों के संशोधन का क्षेत्र सीमित है, जबकि सर्वज्ञ परमात्मा के द्वारा बताए इन ग्रंथों से पता चलता है कि वास्तव में दुनिया का प्रमाण कितना विशाल है । वैज्ञानिक इन ज्योतिष चक्रों को उपग्रह के रुप में मानती है, जबकि ये ज्योतिष चक्र ज्योतिष देवताओं के विमान स्वरुप है ।

वैज्ञानिक सूर्य को स्थिर मानकर अन्य गृह एवं पृथ्वी को गतिशील मानते है । जबकि वास्तविकता है कि पृथ्वी स्थिर है और ये

ज्योतिष चक्र सतत गतिमान है । पृथ्वी से 790 योजन पर तारें, 800 योजन पर सूर्य, 880 योजन पर चन्द्र, 884 योजन पर नक्षत्र एवं 900 योजन पर ग्रह के विमान हैं । (प्रमाण अंगुल से 1 योजन = 400 कोस जो वर्तमान गणित के अनुसार 3600 मील होता है ।)

सूर्य विमान से भी चन्द्र विमान महा ऋद्धि संपन्न है । सूर्य विमान से चन्द्र के विमान बडे है तथा सूर्य के इन्द्र की अपेक्षा चन्द्र के इन्द्र का आयुष्य भी विशेष अधिक है । ये सारे ज्योतिष चक्र मेरु पर्वत को प्रदक्षिणा करते हुए घुमते है, जिसके कारण ढाई-द्वीप में दिन–रात एवं ऋतुओं का निर्माण होता है । ढाई-द्वीप रूप इस मनुष्य लोक में 132 सूर्य और 132 चन्द्र के विमान सतत गतिशील है । इसके बाहर के सारे ज्योतिष चक्र हमेशा स्थिर है । 132 सूर्य चन्द्र विमानों में से जंबू द्वीप में 2, लवण समुद्र में 4, धातकी खंड में 12, कालोदधि समुद्र में 42 और अर्ध पुष्कर द्वीप में 72 सूर्य–चन्द्र के विमान है ।

दोनों ही उपांगों में एक समान विषय एवं एक समान शब्द रचना देखने को मिलती है ।

18

जंबू द्वीप प्रज्ञप्ति

श्री जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र छठा उपांग है । प्राकृत भाषा में इस सूत्र का नाम **``जंबू दीव पन्नति''** है । **181 सूत्र** में विभक्त यह आगम **सूत्र 4456 श्लोक** प्रमाण है । यह आगम दो विभागों में विभक्त है, जिसमें पूर्वार्ध में चार वक्षस्कार है और उत्तरार्ध में तीन वक्षस्कार है । इस आगम पर रचित पूज्य आचार्य श्री मलयगिरिजी की वृत्ति वर्तमान में उपलब्ध नहीं है । उसके बाद हुए पूज्य महोपाध्याय श्री शांतिचन्द्र गणिजी द्वारा रचित 18000 श्लोक प्रमाण की **'प्रमेयरत्नमंजूषा'** नाम की विस्तृत टीका वर्तमान में उपलब्ध है ।

छठे अंग श्री ज्ञाताधर्मकथा आगम का यह छठा उपांग है । गणितानुयोग के इस उपांग में भूगोल के विषय की जानकारी है ।

मिथिला नगरी में एक बार प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामीजी द्वारा परमात्मा श्री महावीर स्वामीजी को जंबू द्वीप के विषय में पूछी गई शंकाओं के समाधान इस आगम ग्रंथ में है ।

पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के कुल मिलाकर सात वक्षस्कारों में से–

❑ **पहले वक्षस्कार** में जंबूद्वीप की विस्तृत जानकारी है । यह जंबूद्वीप तिर्च्छालोक के मध्य में असंख्य द्वीप और समुद्रों के मध्य में रहा हुआ है । सभी अन्य द्वीपों की अपेक्षा यह सबसे छोटा द्वीप है । यह द्वीप एक लाख योजन लंबा और चौडा है । इसकी परिधि (Diameter) 3,16,227 योजन से कुछ अधिक है । इसकी जगती (Boundary) पर चारों दिशा में विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नाम के चार द्वार है ।

❑ **दूसरे वक्षस्कार** में भरतक्षेत्र की अपेक्षा से काल व्यवस्था बताई है । भरतक्षेत्र में एक कालचक्र में 20 कोटा–कोटी सागरोपम का काल होता है, जो अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में विभक्त है । इन दोनों

काल में सुषम सुषम, सुषम, सुषम दुषम, दुषम सुषम, दुषम और दुषम दुषम के नाम के छह–छह आरे उतरते और चढते क्रम से होते है ।

❑ **तीसरे वक्षस्कार** में भरत चक्रवर्ती के नाम पर यह क्षेत्र भरतक्षेत्र के नाम से जाना जाता है इस हेतु से भरत चक्रवर्ती के जीवन के सारे प्रसंगों का वर्णन है । अंत में भरतक्षेत्र नाम भी शाश्वत बताया है ।

❑ **चोथे वक्षस्कार** में भरतक्षेत्र से अतिरिक्त हैमवंत, हरिवर्ष, महाविदेह, रम्यक्, हिरण्यवंत एवं ऐरावत क्षेत्र तथा बीच में आये वर्षधर पर्वत, देवकुरु, उत्तरकुरु आदि का वर्णन है ।

❑ **पांचवें वक्षस्कार** में तीर्थंकर परमात्मा के जन्म महोत्सव का वर्णन है । इस वर्णन के आधार पर ही स्नात्र पूजा के काव्यों की रचना हुई है ।

❑ **छठे वक्षस्कार** में जंबू द्वीप के खंड, योजन, वर्ष, पर्वत, कूट, तीर्थ, श्रेणि, विजय, द्रह और नदियों का वर्णन है ।

❑ **सातवें वक्षस्कार** में जंबूद्वीप में रहे 2 चन्द्र, 2 सूर्य, 56 नक्षत्र, 176 महाग्रह और 1,33,950 कोडाकोडी तारों के परिभ्रमण का वर्णन किया है ।

इस जंबूद्वीप का नाम जंबू नाम के अनाहत देव के नाम से है । इस जंबूद्वीप में कम से कम 4 तीर्थंकर और ज्यादा से ज्यादा 34 तीर्थंकर होते है ।

पूज्य आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा रचित **जंबूद्वीप संग्रहणी (लघु संग्रहणी)** ग्रंथ का मूल–स्रोत यह जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति आगम है ।

19 से 23

निरयावलिका-कल्पवतंसिका-पुष्पिका-पुष्पचूलिका-वह्निदशा सूत्र

❑ श्री निरयावलिका सूत्र आठवाँ उपांग है । इस सूत्र के पाँच वर्ग है, जिनमें से पीछले चार वर्ग स्वतंत्र एक–एक उपांग माने जाते है । इस अपेक्षा से दूसरा वर्ग श्री कल्पवतंसिका सूत्र नाम का नौवां उपांग है । तीसरा वर्ग श्री पुष्पिका सूत्र नाम का दसवां उपांग है । चौथा वर्ग श्री पुष्पचूलिका सूत्र नाम का ग्यारहवा उपांग है और पांचवाँ वर्ग श्री वह्नि दशा सूत्र नाम का बारहवां उपांग है । प्राकृत में इनके नाम क्रमशः निरियावलियाणं, कप्पवडिंसयाणं, पुप्फिआणं, पुप्फचूलिआणं और वण्हिदसाणं है ।

पांचो उपांग मिलाकर इनका मूल सूत्र 1100 श्लोक प्रमाण है तथा विक्रम संवत 1228 में हुए श्री चन्द्रसूरिजी महाराज द्वारा विरचित विषमपद बोधिका स्वरुप 600 श्लोक प्रमाण टीका है । ये पाँचो क्रमशः अंतकृद् दशांग, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्न व्याकरण, विपाक सूत्र और दृष्टिवाद के उपांग है । प्रश्नोत्तर की शैली में रहे इन उपांगो में अंतिम केवली श्री जंबूस्वामी द्वारा पूछे गए प्रश्नों का सूधर्मास्वामी द्वारा दिये उत्तर है ।

❑ आठवें उपांग **श्री निरयावलिका सूत्र** में दस अध्ययन है । 'निरयावलिका' का अर्थ है **नरक में जाने वाले जीवों की श्रेणि ।** इस सूत्र में श्रेणिक महाराजा की मुख्य रानी चेल्लणा के पुत्र कोणिक का विस्तार से वर्णन है । श्रेणिक राजा से प्राप्त हुए सेचनक हाथी और कुंडल युगल आदि से हल्ल–विहल्ल विलास करते थे । उनको देखकर कोणिक राजा की रानी उसे पाना चाहती थी । कोणिक के द्वारा उनसे मांगने पर इनकार करके दोनों भाई चेटक राजा की शरण ले लेते है । तब चेटक राजा और कोणिक के बीच **रथमुशल** और **महाशिलाकंटक** नाम के दो भयंकर युद्ध होते है । इन युद्ध में श्रेणिक राजा के काल, सुकाल आदि

दस पुत्र-जो कोणिक राजा के पक्ष में थे, उन्हें चेटक राजा ने दस दिनों में एक-एक बाण से मार दिया । वे सभी मरकर नरक में गए । दोनों युद्धों में दोनों पक्ष के लाखों सैनिक आदि मारे गए, जो तीव्र रौद्र ध्यान से मरकर अधिकांश सारे नरक में गए । इस तरह नरक में जाने वाले जीवों की श्रेणि का निर्देश करते इस उपांग का नाम निरयावलिका सूत्र है ।

❑ नौवें उपांग **श्री कल्पावतंसिका सूत्र** में दस अध्ययन है । इस सूत्र में श्रेणिक महाराजा के 10 पौत्र पद्मकुमार, महापद्मकुमार आदि का वर्णन है । उन्होंने भगवान महावीर स्वामी की धर्म देशना श्रवण की फिर वैरागी बनकर दीक्षा स्वीकार की । कठोर संयम पालन करके अंत समय में वे दसों ही महामुनि क्रमशः पहले सौधर्म देवलोक से दसवें प्राणत देवलोक में उत्कृष्ट स्थिति के देवता बने । देवलोक से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म पाकर साधना करके मोक्ष में जाएगें ।

❑ दसवें उपांग **श्री पुष्पिका सूत्र** में 10 अध्ययन है । जैसे खीला हुआ पुष्प सुख का प्रतिक है, वैसे ही इस पुष्पिका उपांग सूत्र में भगवान श्री महावीर स्वामी को वंदन करने आये सूर्य–चन्द्र, बहुपुत्रिका देवी आदि को देख मनःपर्यवज्ञानी श्री गौतम स्वामी ने लोक हित को ध्यान में रखकर इन सभी देवताओं की ऋद्धि–समृद्धि का कारण पूछा । उत्तर में भगवान महावीर ने सभी का पूर्व भव बताया । पहले अध्ययन में **चन्द्र देव,** दूसरे अध्ययन में **सूर्य देव,** तीसरे अध्ययन में **शुक्रेन्द्र,** चोथे अध्ययन में **बहुपुत्रिका देवी,** पाँचवे अध्ययन में **पूर्णभद्र देव,** छठे अध्ययन में **माणिभद्र देव,** सातवें अध्ययन में **दत्त देव,** आठवें अध्ययन में **शिवदेव,** नौवें अध्ययन में **बलदेव** और दसवें अध्ययन में **अनादृत देव** का वर्णन है । इन सभी देवताओं ने पूर्व भव में निर्मल संयम जीवन का पालन किया था, जिसके अनुशांगिक फल स्वरुप यह ऋद्धि–समृद्धि है ।

❑ ग्यारहवे उपांग **श्री पुष्पचूलिका** में 10 अध्ययन है । प्रभु महावीर को वन्दन करके **श्रीदेवी** आदि जब प्रभु के समक्ष भक्ति स्वरुप नाटक करती है, तब विनयमूर्ति श्री गौतम स्वामी ने प्रभु महावीर को इन देवियों के विषय में प्रश्न करते है । प्रश्न के उत्तर स्वरुप प्रभु इनका पूर्व भव बताते है । इसके दस अध्ययनों में क्रमशः **श्रीदेवी, ह्रीदेवी, धृतिदेवी, कीर्तिदेवी, बुद्धिदेव, लक्ष्मी देवी, इलादेवी, सूरादेवी, रसदेवी और**

गंधदेवी के पूर्व भव का वर्णन है । पूर्व भव में 23 वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान के पास श्री पुष्पचूलिका गुरुणी के पास इन्होंने संयम जीवन स्वीकार किया था । फिर कर्म के वश होकर वे सभी बकुश संयम वाली बनी । चारित्र में विराधना कर उसकी आलोचना न करने के कारण एक–एक पल्योपम आयुष्यवाली देवियाँ बनी । देवलोक से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष प्राप्त करेगी ।

❑ बारहवाँ उपांग **श्री वह्निदशा (वृष्णिदशा–विष्णु दशा) सूत्र** में बारह अध्ययन है । पृथ्वीतल को पावन करते हुए बाइसवें तीर्थपति श्री नेमिनाथ प्रभु द्वारिका नगरी में पधारे थे । तब श्री कृष्ण महाराजा के साथ बडे भाई बलभद्र के निषध, अनिय आदि बारह पुत्र प्रभु की धर्म देशना का श्रवण करने गए । देशना सूनकर निषध आदि 12 भाइओं ने श्रावक व्रत स्वीकार किया । तब श्री नेमिनाथ भगवान के **श्री वरदत्त गणधर** ने प्रभु से निषध आदि के रुप–कांति और तेजस्वीता का कारण पूछा, तब प्रभु ने उनके पूर्व भव में पालन किए निर्मल चारित्र जीवन का वर्णन किया । क्रमशः बारह भाइओं ने प्रभु नेमिनाथ भगवान के पास दीक्षा स्वीकार की । निर्मल चारित्र धर्म का पालन कर समाधि मरण को प्राप्त हुए । पुनः श्री वरदत्त गणधर ने उनके आगामी भव के विषय में पूछा, तब प्रभु ने बताया कि निषध आदि महामुनि यहाँ से कालधर्म पाकर सर्वार्थसिद्ध विमान में 33 सागरोपम की स्थिति वाले देव बने है । वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर संयम जीवन का पालन कर मोक्ष प्राप्त करेंगे ।

अंधक वृष्णि के वंश में पैदा हुए इन नर रत्नों के चरित्र होने से, इस आगम ग्रंथ का वास्तविक नाम श्री नंदिसूत्र की चूर्णी के अनुसार **अंधकवृण्हि दशा** है ।

बारहवाँ अंग–दृष्टिवाद का विच्छेद होने पर भी बारहवाँ उपांग अभी भी विद्यमान है ।

दस पयन्ना

ग्यारह अंग और बारह उपांग के बाद 10 पयन्ना का क्रम है। प्राकृत भाषा में **'पईन्नग'**, संस्कृत भाषा में 'प्रकीर्णक' नाम से पहिचाने जाने वाले इन सूत्रों को गुजराती भाषा में पयन्ना कहते है।

श्री नंदीसूत्र की टीका के अनुसार–भगवान महावीर के सारे 14000 शिष्यों ने पयन्ना की रचना की थी। अतः 14000 पयन्नाएँ रचे गए थे। उनमें से वर्तमान में उपलब्ध 45 आगमों में मात्र 10 पयन्ना का ही समावेश है। अधिकांश सारी पयन्नाएँ विच्छेद हो चूकी है। फिर भी आगम संशोधक पूज्य मुनिश्री पुण्यविजयजी महाराज ने **पईन्नयसुत्ताई भाग-1** और **भाग-2** में **उपलब्ध 32 पयन्नाओं का संग्रह** एवं प्रकाशन किया है।

दस पयन्नाओं के नाम

1. श्री चतुःशरण प्रकीर्णक सूत्र,
2. **श्री आतुर प्रत्याख्यान प्रकीर्णक सूत्र,**
3. श्री महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक सूत्र,
4. **श्री भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक सूत्र,**
5. श्री तंदुल वैचारिक प्रकीर्णक सूत्र,
6. **श्री संस्तारक प्रकीर्णक सूत्र,**
7. श्री गणिविद्या प्रकीर्णक सूत्र,
8. **श्री चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक सूत्र / श्री गच्छाचार प्रकीर्णक सूत्र**
9. श्री देवेन्द्र स्तव प्रकीर्णक सूत्र,
10. **श्री मरण समाधि प्रकीर्णक सूत्र।**

इनसे अतिरिक्त श्री गच्छाचार प्रकीर्णक सूत्र एवं श्री वीरस्तव प्रकीर्णक सूत्र, आठवें और दसवें, प्रकीर्णक सूत्र के स्थान पर माने जाते है।

24

चतुः शरण प्रकीर्णक सूत्र

दस प्रकीर्णक सूत्रो में सबसे पहला **श्री चतुः शरण प्रकीर्णक सूत्र ।** प्राकृत भाषा में इस ग्रंथ का नाम **'चउसरण पइन्ना'** है । 63 श्लोक प्रमाण के इस आगम का मूलनाम **कुशलानुबंधी अध्ययन** है । इस ग्रंथ के रचयिता भगवान महावीर के हाथों से दीक्षित बने पूज्य आचार्य **श्री वीरभद्र गणि क्षमाश्रमण** है । इन्होने आतुर प्रत्याख्यान, भक्त परिज्ञा एवं संस्तारक प्रकीर्णक ग्रंथ की भी रचना की है, तथा इनके द्वारा **आराधना पताका** ग्रंथ रचा गया है, जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं है ।

प्रस्तुत ग्रंथ का विषय अरिहंत आदि चार की शरण, दुष्कृत की निंदा और सुकृतों की अनुमोदना है । **जीवन में की गई साधना का सार मरण समय की समाधि है और मरण समय समाधि की प्राप्ति के लिए जीवन में समाधि भाव खूब जरूरी है ।** इस मुख्य विषय पर ध्यान देते हुए इस ग्रंथ में समाधि पाने का सर्व श्रेष्ठ मार्ग बताया है ।

ग्रंथ के प्रारंभ में सामायिक, चतुर्विंशति स्तव, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान रूप छह आवश्यक का वर्णन करते हुए, इसके पालन से आत्म शुद्धि का मार्ग बताया है ।

प्रथम अधिकार में संसार की चार गति के नाशक ऐसे अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली भगवंत के द्वारा प्ररुपित धर्म की सच्चे भाव से शरण स्वीकार करने स्वरुप चतुः शरण स्वीकार का वर्णन किया है ।

दूसरे अधिकार में अपनी आत्मा द्वारा चार गतिरुप संसार में परिभ्रमण करते जो कोई हिंसा आदि पाप व्यापार किये हो, उनकी आत्मसाक्षी से निंदा कर गुरु साक्षी से गर्हा के स्वरुप दुष्कृत गर्हा का वर्णन किया है ।

तथा तीसरे अधिकार में अरिहंत आदि गुणवान आत्माओं के सुकृतों की अनुमोदना का वर्णन किया है ।

प्रतिदिन स्मरण करने योग्य पंचसूत्र का प्रथम सूत्र–पाप प्रतिघात–गुण बीजाधान सूत्र का मूल स्त्रोत यह प्रकीर्णक ग्रंथ है ।

25

आतुर प्रत्याख्यान प्रकीर्णक सूत्र

दूसरा प्रकीर्णक **श्री आतुर प्रत्याख्यान प्रकीर्णक** सूत्र है । प्राकत भाषा में इसका नाम **'आउर पच्चक्खाण पइन्नयं'** है । 70 श्लोक प्रमाण इस प्रकीर्णक सूत्र का मूल स्त्रोत श्री भगवती सूत्र के 13 वें शतक का साँतवां उद्देशा है । श्री नंदीसूत्र के रचनाकर ने इस सूत्र के नाम की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है–

'आतुरः चिकित्स्य–क्रियाव्यपेतस्य प्रत्याख्यानं यत्राध्ययने विधिपूर्वकमुपवर्ण्यते तदातुर प्रत्याख्यानाम् ।'

अर्थात्–रोग से पीड़ित आत्मा के लिए मरण के समय परभव की आराधना में स्वीकार करने के योग्य प्रत्याख्यान का वर्णन जिसमें है वह आतुर प्रत्याख्यान प्रकीर्णक है ।

इस प्रकीर्णक में मरण के तीन प्रकार बतलाए है । अविरति-धर गृहस्थ का मरण बाल मरण है । देशविरति-धर श्रावक का मरण बाल पंडित मरण है और सर्वविरति-धर साधु का मरण पंडित मरण है ।

संसार में जिसका जन्म हुआ है, उसकी मरण निश्चित है । परंतु मरण के बाद जन्म हो ऐसा कोई एकांत नियम नहीं है । केवली भगवंत यहाँ से मरण पाकर पुनः जन्म नहीं लेते, वे हमेशा के लिए मोक्ष को प्राप्त कर लेते है । अतः **मरण से ही मरण को मारा जा सकता है ।** मरण को मारने की प्रक्रिया समाधि मरण से होती है ।

अविरतिधर मिथ्यादृष्टि जीव अपने दुःख दर्द में रोते हुए प्राण छोडता है अतः उसके मरण को बाल मरण कहा है ।

सम्यग्दृष्टि देशविरति-धर श्रावक, जिसे जीवन जीने की आशा है इसलिए उसने अंतिम संलेखना नहीं की है, वह श्रावक भी मरण को समीप में जानकर सागारिक अनशन स्वीकार कर समाधि मरण को प्राप्त कर सकता है, इसलिए इसके मरण को बाल पंडित मरण कहा है ।

सर्वविरतिधर साधु मरण को समीप में जानकर अनशन का स्वीकार करता है । अपने पूर्वकृत पापों की निंदा कर वर्तमान में संवर का स्वीकार कर भविष्य में भी पापों का पच्चक्खाण करता है । 63 प्रकार के दुर्ध्यान से हुए अतिचारों का प्रतिक्रमण करता है । अरिहंतादि चार की शरण स्वीकार, दुष्कृत गर्हा और सुकृत अनुमोदना करके, पाँच महाव्रतों का पुनः स्वीकार एवं पाप स्थानकों का प्रत्याख्यान करता है । सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव धारण कर उनसे क्षमायाचना करता है ।

पास में रहे निर्यामक साधु उन्हें आत्मा और देह का विवेक पैदा कर समाधि मरण में स्थिर करते है, जिससे राधावैद्य से भी कठिन ऐसे मरण को साधक आत्मा सहजता से स्वीकार करती है । इस प्रकार समाधि मय मृत्यु को पंडित मरण कहा है ।

पंडित मरण को प्राप्त हुई आत्मा अल्प भवों में मुक्ति सुख को प्राप्त करती है ।

26

महा प्रत्याख्यान प्रकीर्णक सूत्र

तीसरा प्रकीर्णक **महा प्रत्याख्यान प्रकीर्णक** सूत्र है । प्राकृत भाषा में इसका नाम **'महापच्चक्खाण पइन्नयं'** है । 142 श्लोक प्रमाण इस प्रकीर्णक ग्रंथ में सर्वविरतिधर श्रमण को अंतिम समय करने योग्य महा आराधना का विस्तार से वर्णन होने से इसका नाम महा प्रत्याख्यान प्रकीर्णक सूत्र है ।

इस सूत्र के प्रथम चरण में अरिहंत आदि पंच परमेष्ठि को नमस्कार किया है । तत्पश्चात् दुष्कृतों की निंदा, बाह्य और अभ्यंतर उपधि का त्याग, रागादि अशुभ भावों का त्याग, एकत्व भावना का चिंतन, सर्व जीव क्षमापना, ज्ञानादि स्वरुप आत्मा का ही आलंबन, प्रमाद के वश होकर व्रत नियमों में हुए अतिचारों की आलोचना, आत्मा का अनुशासन, पौदगलिक सूखों की वास्तविकता के स्वरुप का चिंतन, पंडित मरण की अभिलाषा, संवर का महात्म्य, ज्ञान की प्रधानता, प्रत्याख्यान का फल, वेदना बढने पर मन को स्थिर करने हितोपदेश, पूर्व काल में समाधि मरण के साधक की प्रशंसा आदि अनेक चरणों का वर्णन कर अंत में निरतिचार सामायिक के निरपवाद प्रत्याख्यान का वर्णन किया है ।

ग्रंथकार श्री वीरभद्र गणि क्षमाश्रमण ने इस ग्रंथ में मार्मिक वचनों से हितशिक्षाएँ दी है । इस आगम की भाषा अति सरल है । वर्तमान में इस आगम ग्रंथ पर कोई टीका उपलब्ध न होने पर भी श्लोक के मर्म को आसानी से समझा जा सकता है ।

27

भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक सूत्र

चौथा प्रकीर्णक **भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक** सूत्र है । प्राकृत भाषा में **'भत्त पइन्नयं'** है । जीवन के अंत काल को जानकर निर्यामक गुरु भगवंत, साधक आत्मा को चारों प्रकार के आहार का त्याग कराते हुए भक्त परिज्ञा आदि अनशन स्वीकार करवाते है । जिसकी विधि इस प्रकीर्णक ग्रंथ में है ।

ग्रंथ के प्रारंभ में शासनपति श्री महावीर स्वामी भगवान एवं जैन शासन की स्तुति है । जैन शासन की सेवा को मुक्ति का कारण बताया है । फिर पंडित मरण के कारण ऐसे 1. भक्त परिज्ञा, 2. इंगिनी मरण एवं, 3. पादपोपगमन अनशन का वर्णन किया है ।

1. भक्त परिज्ञा अनशन – इस अनशन में साधक आत्मा को तीन अथवा चारों प्रकार के आहार के त्याग का पच्चक्खाण होता है । गच्छ में रहे साधु, साधक आत्मा की सेवा कर सकते है तथा साधक स्वयं भी अपनी काया का हलन–चलन कर सकते है । कोमल संथारे पर साधक अनशन स्वीकार करता है और जरुरत पडने पर करवट भी बदल सकता है । आवश्यकता के अनुसार अधिक-तम 48 निर्यामक हो सकते है, जिसमें साधु और श्रावक दोनों ही इसके अधिकारी है । वर्तमान काल में संघयण बल की मंदता के कारण इच्छुक साधक को एक–एक दिन के उपवास का पच्चक्खाण करवाकर यथा समाधि अनशन कराया जाता है ।

2. इंगिनी मरण अनशन – इस अनशन में चार आहार के त्याग के साथ इंगिनी अर्थात् शारीरिक चेष्टा की अनुमति होती है । साधक आत्म ठंडी–गर्मी आदि से बचने मर्यादित क्षेत्र में गमनागमन कर सकता है । चार आहार के त्याग के साथ गच्छ का भी त्याग करके जंगल–गुफा आदि निर्जन स्थान में इस अनशन का स्वीकार किया जाता है । इसमें किसी निर्यामक या परिचारक की सेवा लेने का निषेध है । वर्तमान काल में संघयण की मंदता के कारण इस अनशन का सर्वथा निषेध है ।

3. पादपोपगमन अनशन – पादप यानी वृक्ष । जैसे वृक्ष को काटकर उसका ठुंठा जहाँ रख दिया हो वहाँ वह निश्चेष्ट रुप में ऐसा ही पडा रहता है, वैसे ही चारों आहार का सर्वथा त्याग कर सभी जीवों से क्षमापना पूर्वक किये जाने वाला यह पादपोपगमन अनशन है । निश्चेष्ट होकर एक ही स्थान में एक ही आसन में स्थिर बने रहना ।

चाहे कितना भी मरणांत उपसर्ग हो या शारीरिक वेदना हो, सभी को समताभाव से आँखों की पलकारों को भी हिलाए बिना स्थिर रहना । चौदह पूर्व के श्रुतज्ञान के विच्छेद के साथ इस अनशन का भी विच्छेद हो चूका है ।

यथानाम इस भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक सूत्र में भक्त परिज्ञा अनशन के सविचार और अविचार रूप दो भेद बताए है । जिस भक्त परिज्ञा अनशन को स्वीकार करने के पहले साधक संलेखना का स्वीकार कर शरीर और कषायों का शोषण करता है, वह सविचार भक्त परिज्ञा है । तथा जो संलेखना के सामर्थ्य से रहित है, उन साधकों का संलेखना स्वीकार किये बिना समाधिपूर्वक भक्त परिज्ञा अनशन स्वीकार करना, वह अविचार भक्त परिज्ञा है ।

आचार्य श्री वीरभद्र गणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित इस प्रकीर्णक में मुख्य रुप से अनशन का अधिकारी, अनशन की विधि और गुरु का उपदेश दिया गया है ।

28

तंदुल वैचारिक प्रकीर्णक सूत्र

पाँचवां प्रकीर्णक है–**श्री तंदुल वैचारिक प्रकीर्णक सूत्र ।** प्राकृत भाषा में इस प्रकीर्णक का नाम–**तंदुल विअलिअं पइन्नयं** है । गद्य और पद्य शैली में संमिश्र यह ग्रंथ 586 श्लोक प्रमाण है । इसके ग्रंथ कर्ता का नाम अथवा समय उपलब्ध नहीं है । इस ग्रंथ पर पूज्य श्री विजयविमल गणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित टीका उपलब्ध है ।

तंदुल यानी चावल । सामान्य से मनुष्य जीवन के सो वर्ष के आयुष्य का प्रमाण कर प्रतिदिन 2 बार भोजन में 32 कवल प्रमाण भोजन करे, जिसमें एक कवल में 2000 चावल के प्रमाण जितना आहार गिने तो एक जन्म में मनुष्य 460 करोड 80 लाख जितने चावल के दानों का प्रमाण होता है । इन चावल के दानों का प्रमाण बताकर ग्रंथकार श्री हमे उपदेश देते है कि पूरे जीवन में इतना आहार करने पर भी संसारी आत्मा कभी तृप्त नहीं होती है । वह हमेशा भौतिक पदार्थों की प्राप्ति में अतृप्त ही रहती है । ``चावल के उदाहरण को मुख्य करके ग्रंथकार ने इस ग्रंथ में उपदेश दिया होने से इसका नाम श्री तंदुल वैचारिक प्रकीर्णक रखा गया है ।''

अशुचि भावना के मुख्य उपदेश से भरे इस ग्रंथ में मनुष्य का गर्भकाल 270½ दिन रुप 8325 मुहूर्त काल बताया है । यह गर्भकाल सामान्य से है बाकि किसी उपघात आदि के कारण अल्प या अधिक भी हो सकता है ।

माता की कुक्षी में उत्पन्न हुआ जीव सबसे पहले अपनी आहार पर्याप्ति पूरी कर पहले सात दिनों में प्रवाही स्वरुप, दूसरे सात दिनों में दही समान, फिर पेशी स्वरुप बनकर एक महिने में फूले हुए मांस जैसा बनता है । दूसरे महिने में कुछ घन रुप में मांस का पिंड बनता है । तीसरे महिने में माता को दोहद उत्पन्न कराता है । चौथे महिने में माता के अंगो की वृद्धि कराता है । पाँचवे महिने में हाथ–पैर और मस्तक रुप अंग का निर्माण होता है । छठे महिने में खून और अंगोपांग का निर्माण होता है । सातवें महिने में 700 शिराएं, 500 पेशियां और मुख्य नौं नसों आदि का निर्माण होता है ।

आठवें महिने में अंगोपांग का निर्माण होता है और नौंवें महिने के अंत में बालक का जन्म होता है । इस प्रकार गर्भ मे मनुष्य का विकास-क्रम बताया है ।

जन्म के बाद मनुष्य के पूरे जीवन में 10 अवस्थाएँ होती है ।

पहली बाल अवस्था में बालक सुख, दुःख, भूख आदि वेदना से अज्ञात होता है ।

दूसरी क्रीडा अवस्था में बालक विविध क्रीडा करने में समर्थ बनता है ।

तीसरी मंदा अवस्था में मनुष्य भोगों में समर्थ बनता है ।

चौथी बला अवस्था में मनुष्य शारीरिक बल में हर तरह से सक्षम बनता है ।

पाँचवीं प्रज्ञा अवस्था में धन–पुत्र–पत्नी–परिवार आदि की चिंता में रत रहता है ।

छठी हायनी अवस्था में काम–भोग से विरक्ति आती है ।

सांतवीं प्रपंचा अवस्था में शरीर रोगों से व्याप्त बनता है ।

आठवीं प्राग्भारा अवस्था में व्यक्ति स्त्री के लिए भी अप्रिय बनता है ।

नौवीं मुन्मुखी अवस्था में व्यक्ति वृद्ध बन जाता है और

दसवीं शायनी अवस्था में व्यक्ति दुःख–दर्द से भरा दीनता में अपने शेष आयुष्य को पूरा करता है ।

मनुष्य का शरीर अशुचि से उत्पन्न हुआ है और इसके भीतर एक मात्र अशुचि ही भरी हुई है । इस शरीर पर चमडी का आवरण है इसलिए वह आकर्षक लगता है । यदि चमडी का आवरण हटा दिया जाय तो भीतर रहे खून, मल–मूत्र, चर्बी, पीप, वीर्य, हड्डी, मांस–मज्जा-मेद आदि को देखना भी पसंद नहीं आता, आकर्षक लगने की बात तो दूर रही । पुरुष के शरीर में रहे नौ छिद्रों और स्त्री के शरीर में रहे बारह छिद्रों में से हमेशा अशुचि का प्रवाह बहता रहता है । ऐसे अशुचि से भरे मनुष्य के शरीर में राग करना यह तो अज्ञानता की निशानी है ।

उपसंहार करते हुए ग्रंथकारश्री ने हितशिक्षा में कहा है कि, **''मृत्यु के साथ पुत्र–मित्र आदि स्नेहीजन साथ छोडकर चले जाते हैं, परंतु जीवन में किया धर्म कभी भी साथ नहीं छोडता है । अतः जीवन में धर्म का अर्जन करने विशेष प्रयत्न करना चाहिए ।''**

29

संस्तारक प्रकीर्णक सूत्र

छठा प्रकीर्णक **श्री संस्तारक प्रकीर्णक सूत्र** है । प्राकृत भाषा में इसका नाम **संथार पइन्नयं है ।** वैसे तो दस प्रकीर्णक ग्रंथों में छह प्रकीर्णक सूत्र समाधि मरण के उपाय बताए है, फिर भी 122 मुल श्लोक प्रमाण वाले इस संस्तारक प्रकीर्णक सूत्र का अधिक महत्त्व है । **आत्मा को भव संसार से अच्छी तरह पार उतारे वह संस्तारक–संथारा ।** साधु जीवन की सारी आराधना का सर्व श्रेष्ठ सार संथारा की आराधना है । यह संथारा की आराधना श्रेष्ठतम एवं लोकोत्तर मंगल है ।

संथारा स्वीकार करने के लिए जो योग्यता जरुरी है, उसको निर्देश करते 31 वें श्लोक में कहा है कि–जिस साधक श्रमण का शारीरिक बल क्षीण हो गया हो । उसके संयम के सारे योगों में हानि हो रही हो, वृद्धावस्था के कारण शूल–श्लेष्मादि अनेक असाध्य रोग पैदा हुए हो, जिसे इस लोक की सारी अपेक्षाए नाश हो गई हो, वही साधक सुविशुद्ध संथारा स्वीकार करने के लिए योग्य है । ऐसी योग्यता प्राप्त होने पर, गुरु के पास आलोचना स्वीकार कर, निर्मल सम्यग्दर्शन एवं निरतिचार श्रमण जीवन पालन करने वाले साधु का संथारा स्वीकार करना सुविशुद्ध संथारा है ।

बाहर के जगत् से मन उठाकर अन्तर्जगत् में मन को स्थिर करना तथा काया के अन्य व्यापार का त्याग कर तृण आदि शय्या पर अनशन करना यह व्यवहार से संस्तारक है और सुविशुद्ध चारित्र में स्थिर रहना निश्चय से संस्तारक है ।

संथारे को स्वीकार किये हुए साधु प्रत्येक समय में असंख्य भव के पाप कर्मों का क्षय करता है । अपार वेदना के बीच में भी मन को समाधि भाव में स्थिर करके जो साधक क्षपक-श्रेणी पर आरुढ होता है, वह सर्व कर्म का क्षय कर मुक्ति प्राप्त करता है । पूर्व में आयुष्य का बंध किया हो तो तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करता है ।

ग्रंथकार ने संथारा स्वीकार करने वाले ऐसे अर्णिकापुत्र, सुकोशल मुनि, अवंतिसुकुमाल मुनि, गजसुकुमाल मुनि, धर्मसिंह मुनि आदि अनेक महामुनिओं के दृष्टांत देकर आत्महितकर शिक्षाएँ प्रदान की है ।

30

गणि-विद्या प्रकीर्णक सूत्र

सातवां प्रकीर्णक सूत्र **श्री गणि-विद्या प्रकीर्णक सूत्र है ।** प्राकृत भाषा में इस सूत्र का नाम **गणिविज्जा पइन्नयं** है । मूल सूत्र 105 श्लोक प्रमाण है ।

बाल–वृद्ध आदि के साधु समुह को गण कहते है । इस गण के जो नायक होते है वे गणि या आचार्य कहलाते है । ऐसे गणि को उपयोगी जो विद्या–ज्ञान है, उसका जिसमें वर्णन है वह गणिविद्या प्रकीर्णक है ।

जैसे दुन्यवी कार्य की सिद्धि में योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव जरुरी होता है, वैसे ही लोकोत्तर विश्व स्वरुप आत्म-साधना के मार्ग में भी शुभ द्रव्य, शुभ क्षेत्र, शुभ काल और शुभ भाव जरुरी होता है । इस आगम ग्रंथ में मुख्य विषय शुभ काल का है ।

श्री संघ और शासन के कार्य-जैसे, श्रुत के उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा करना, गृहस्थ को सम्यक्त्व, अणुव्रत, दीक्षा आदि प्रदान करना, साधु को महाव्रत, पद आदि प्रदान करना, जिन मंदिर निर्माण संबंधी खनन-मुहूर्त, शिला-स्थापन, गर्भ-गृह-प्रवेश, प्रतिष्ठा, अंजनशलाका आदि तथा विहार, नगर-प्रवेश, चातुर्मास-प्रवेश आदि शुभ कार्यों में शुभ काल की आवश्यकता होती है, जिसे तय करने के लिए ज्योतिष विद्या का उपयोग होता है । आचार्य संबंधी इन कार्यों में शुभ मुहूर्त का निर्णय करने के लिए इस ग्रंथ में ज्योतिष संबंधी नौ विषय–दिन, तिथि, नक्षत्र, करण, ग्रह, मुहूर्त, शकुन, लग्न और निमित्त बल पर प्रकाश डाला है ।

श्री जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में जंबूद्वीप में रहे ज्योतिष चक्र–सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि के विषय में नाम और भेद का वर्णन किया था, जबकि यहाँ इस ग्रंथ में साधु जीवन के धर्म अनुष्ठानों में कौन–सा अनुष्ठान कब शुभ–अशुभ फलदायी है, उस विषय का वर्णन किया गया है । इस दृष्टि से कहे तो यह ग्रंथ ज्योतिष के गणित का नहीं बल्कि

ज्योतिष के फलादेश पर प्रकाश डालता है । फलादेश को बताने वाला यह ग्रंथ सबसे प्राचीन है, ऐसा अवश्य कह सकते है क्योंकि इस ग्रंथ के रचयिता प्रभु महावीर के 14000 शिष्यों में से कोई एक है ।

श्री चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक सूत्र

प्राकृत भाषा में इसका नाम **'चंदा विज्झय पइन्नयं'** है । मुल श्लोक 175 गाथा वाले इस ग्रंथ के कर्ता का नाम अज्ञात है ।

चन्द्र यानी दाई आँख की कर्णिका और वेध्यक यानी उसे बींधना । जैसे राधावेध की कला में निष्णात धनुर्धर स्तंभ पर घुमती मछली की दाई आँख को, सात चक्र के छिद्रों में से, तेल से भरे कुंड में स्थिर दृष्टि कर, बाण छोडकर बींधता है, वैसे ही मरण समय सावधान बनी साधक आत्मा, समाधि मरण के द्वारा सद्गति को साधती है । राधा वेध का दृष्टांत देकर यह बताया है कि–मरण के समय समाधि भाव अत्यंत कठिन है । कठिन भी कार्य अप्रमाद भाव की साधना से सिद्ध किया जा सकता है, इसलिए ग्रंथकार महर्षि ने इस ग्रंथ में उपदेश देते हुए कहा है कि–**''शरीर पर ममत्व का त्याग कर इस ग्रंथ रत्न का श्रवण तथा प्रमाद का त्याग कर इस ग्रंथ में बताए उपदेश का आचरण करो ।''**

ग्रंथकार ने तीसरी गाथा से सात द्वार बताए है, जो इस प्रकार है–

1. विनय गुण द्वार – विनय गुण दुर्लभ है । जो विनीत शिष्य है, उसको ज्ञान सुलभ है । विनय से सिखा हुआ एक सूत्र भी समस्त श्रुत के सार को प्राप्त करानेवाला होता है ।

2. आचार्य गुण द्वार – आचार्य में कालज्ञ, देशज्ञ, समयज्ञ, अत्वरीत, असंभ्रांत, अनुवर्तक और अमायी आदि गुण होने पर वे प्रशंसा पात्र बनते है । दीपक की भाँति वे अन्य को भी ज्ञान से प्रकाशित करते है ।

3. शिष्य गुण द्वार – शिष्य को विनीत, प्रिय, आचार्य के इशारे को समझनेवाला, सहनशील, लाभ–अलाभ में स्थिर मन, सरल चित्त, सेवा–वैयावच्च और स्वाध्याय में तत्पर, धैर्यवान और बुद्धिशाली आदि गुणों को आत्मसात् करना चाहिए ।

4. विनय निग्रह गुण द्वार – धर्म रुपी कल्पवृक्ष का फल मोक्ष है, जिसका बीज विनय है । विनीत शिष्य अल्पज्ञानी होने पर भी मोक्ष प्राप्त करता है । जैसे अंधे व्यक्ति के लिए दीपक का प्रकाश निरर्थक है, वैसे ही अविनीत शिष्य को शास्त्र का बोध निरर्थक है ।

5. ज्ञान गुण द्वार – ज्ञान गुण आत्मा का रक्षक है । जैसे सूइ में धागा डालकर रखने से वह सूइ खो नहीं जाती, वैसे आत्मा में यदि ज्ञान गुण हो तो वह आत्मा संसार में कहीं भटकती नहीं है ।

6. चारित्र गुण द्वार – मनुष्य जन्म और जैन धर्म की प्राप्ति होने पर भी चारित्र की प्राप्ति अति दुर्लभ है । जीवन में चारित्र प्राप्त हो जाय तो सम्यक्त्व और ज्ञान भी सफल हो जाता है और मोक्ष की प्राप्ति आसान हो जाती है ।

7. मरण गुण द्वार – जिसने जीवन में कष्ट सहन नहीं किये, वह मरण के समय होने वाली भयंकर वेदना को कैसे सहन कर सकेगा ? अतः मरण के समय समाधि प्राप्त करना, राधावेध की साधना से भी कठिन बताया है । समाधिभाव पाने के लिए जीवन में बहिर्मुखता का त्याग और अन्तर्मुखता लाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

31

श्री गच्छाचार प्रकीर्णक सूत्र

दस प्रकीर्णक सूत्र में आठवें चन्द्र वेध्यक प्रकीर्णक सूत्र के विकल्प में **श्री गच्छाचार प्रकीर्णक सूत्र** का समावेश किया गया है । किसी अज्ञात पूर्व महापुरुष द्वारा श्री महानिशीथ सूत्र, श्री बृहत् कल्प सूत्र एवं श्री व्यवहार भाष्य सूत्र रुप तीन छेद ग्रंथों में से इस सूत्र की रचना की गई है । यह सूत्र 137 श्लोक प्रमाण है ।

इस सूत्र में गच्छ यानी साधु के समुदाय का स्वरुप बताया है । जो गच्छ सन्मार्ग का अनुसरण करता है, वह सुगच्छ है और इससे विपरीत कुगच्छ है । सुगच्छ और कुगच्छ का निर्णय उनके अनुशासक आचार्य के आधार पर है । अतः गच्छ के गुण–दोषों के साथ आचार्य का स्वरुप, गुण–दोष एवं साधु–साध्वी के लक्षण आदि का वर्णन भी इस सूत्र में किया गया है ।

आचार्य का वर्णन करते हुए कहा है कि–गच्छ में रहे साधु–साध्वी आचार्य की आज्ञा में रहते है । वे आचार्य गच्छ रुपी महल के लिए आधार स्तंभ समान होते है । भवजल से पार उतरने के लिए वे बडे जहाज समान होते है । गुणवान आचार्य के आश्रय में रहा हुआ गच्छ भी मोक्ष प्राप्त करने वाला बनता है । **ज्ञानाचार आदि पाँच आचारों में जो स्वयं प्रवर्तन करते है और अपने आश्रित गण को भी संयम धर्म में स्थिर करते है, वे ही उत्तम आचार्य है । सूत्र और अर्थ से गच्छ को पढ़ानेवाले आचार्य, गच्छ के लिए चक्षु के समान है ।**

आचार्य के गुणों से हीन जो राजकथा आदि विकथाओं में तल्लीन रहते हो, स्वेच्छाचारी हो, आरंभ–समारंभ में डुबे हुए हो, ऐसे आचार्य को अधम आचार्य कहा गया है । गुणहीन और दोषाधीन आचार्य के आश्रय में रहने वाला गच्छ भी दुर्गतिगामी बनता है ।

गच्छ में रहे साधु–साध्वी की आचार मर्यादा बताते हुए कहा है कि–साधु को अपना पूरा जीवन सन्मार्ग में रहे गच्छ में ही बिताना चाहिए । गच्छ में रहे छोटे–बडें साधु के साथ विनय पूर्वक का व्यवहार करना चाहिए । गच्छ में रहे गुरु निष्कारण कठोर भाषा में भी अनुशासन करे तो शिष्य को तहत्ति कर स्वीकार करना चाहिए ।

''गीतार्थ गुरु के वचन से जहर पीना श्रेष्ठ है और अगीतार्थ के वचन से अमृत भी पीने जैसा नहीं है ।''

स्पष्ट और कडक शब्दों में किया गया यह अनुशासन प्रमाद का त्याग करने में उत्साह पैदा करने वाली प्रभु की करुणा ही है । गुरु की आज्ञा को प्राप्त कर प्रत्येक साधु को इस आगम को पढ़कर जीवन में आत्मसात् करना चाहिए ।

32

देवेन्द्रस्तव प्रकीर्णक सूत्र

नौंवा प्रकीर्णक **श्री देवेन्द्रस्तव प्रकीर्णक सूत्र है ।** प्राकृत भाषा में इसे **'देविन्दत्थओ पइन्नयं'** कहते है । 311 मूल श्लोक प्रमाणवाले इस स्तोत्र की रचयिता श्री ऋषिपालित स्थविर है । नाम के अनुरुप इस प्रकीर्णक ग्रंथ का मुख्य विषय **''देवेन्द्रों के द्वारा की गई प्रभु वीर की स्तवना है ।''** इस ग्रंथ में श्रावक–श्राविका का संवाद है । जब श्रावक द्वारा चैत्यवंदन के अंत में ''32 इन्द्रों द्वारा पूजित श्री महावीर स्वामी को नमस्कार हो'' ऐसा कहकर उन्हे वंदन किया गया, तब 64 इन्द्रों के स्थान पर 32 इन्द्रों का उल्लेख करने की श्राविका की जिज्ञासा पर श्रावक के द्वारा 64 इन्द्रों का पूर्ण परिचय दिया गया है ।

देवता के मुख्य चार विभाग है–1. भवनपति, 2. व्यंतर, 3. ज्योतिष, 4. वैमानिक । 64 इन्द्रों में भवनपति के 20, व्यंतर–वाणव्यंतर के 32, ज्योतिष के 2 और वैमानिक के 10 इन्द्र गिने जाते है । इन में से यहाँ व्यंतर के 32 इन्द्रों को न गिनकर शेष 32 इन्द्रों में भवनपति के 20, ज्योतिष के 2 और वैमानिक के 10 इन्द्र गिने गए है ।

ये कहाँ रहते हैं ? – भवनपति देवता का निवास रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल से 1000 योजन से लगभग 1 लाख 78 हजार योजन के भाग में पहली नरक के 13 प्रतरों के बीच एकांतर 10 प्रतरों में बताया है ।

व्यंतर देवता का निवास रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल से 100 योजन नीचे से प्रारंभ होकर 900 योजन तक है । ज्योतिष के विमान रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल से ऊपर 790 से 900 योजन के बीच के अंतराल में है ।

वैमानिक देवता ऊर्ध्व लोक में से 8 वें राजलोक से 14 वें राजलोक तक उनके विमानों में रहते है ।

इससे अतिरिक्त इस ग्रंथ में उन इन्द्रों के आयुष्य, उनका साम्राज्य, उनके विमान, भवन, नगरी की संख्या, उनके विमानों के वर्ण, उन देवताओं का आहार, श्वासोश्वास, अवधिज्ञान का प्रमाण आदि का विस्तार से वर्णन किया है । देवों और इन्द्रों के वर्णन के पश्चात् सिद्धात्मा और सिद्धशिला का भी वर्णन किया है ।

33

मरण समाधि प्रकीर्णक सूत्र

दसवाँ प्रकीर्णक–**मरण समाधि प्रकीर्णक सूत्र** है । प्राकृत भाषा में इसका नाम–**मरण समाहि पइन्नयं है ।** 667 मूलश्लोक प्रमाण इस ग्रंथ के रचयिता आचार्य **श्री वीर भद्र गणि महाराज** है ।

यह सूत्र मरण विभक्ति, मरण विशोधि, मरण समाधि, संलेखना श्रुत, भक्त परिज्ञा, आतुर प्रत्याख्यान, महा प्रत्याख्यान और आराधना सूत्र – इन आठ सूत्रों के आधार पर रचा गया है । मरण समय समाधि की प्राप्ति इस सूत्र का मुख्य विषय होने से इसका नाम मरण समाधि प्रकीर्णक सूत्र है ।

मृत्यु से मृत्यु को मारने के लिए समाधि मरण अत्यंत जरुरी है । भूतकाल में समाधि मरण की प्राप्ति के अभाव में हमारी आत्मा अनंती बार बाल मरण के द्वारा मरण पायी है । अब इस जन्म–मरण के अंत लाने वाली समाधि मरण को पाने हमे पूर्ण रुप से तैयारी करनी चाहिए । मरण को समाधि मरण के द्वारा कैसे सुधारा जा सकता है, इस उद्देश्य से ग्रंथकार महर्षी ने इस सूत्र में पंडित मरण की विधि बताई है ।

पंडित मरण के लिए अति आवश्यक बातों के सार रुप इस ग्रंथ में बताया है कि–

❑ साधक आत्मा को रस गारव, ऋद्धि गारव और शाता गारव से मुक्त होना चाहिए ।

❑ उसे माया शल्य, निदान शल्य और मिथ्यात्व शल्य से मुक्त होकर धर्म आराधना करनी चाहिए एवं व्रत–नियम में जो कोई भी अतिचार दोष का सेवन हुआ हो उसे माया का त्याग कर बालक भाव से आलोचना स्वीकार कर शल्य रहित बनना चाहिए ।

❑ **लज्जा, माया अथवा गारव के वश हुई आत्मा, गुरु के समक्ष अपने पापों को प्रकट नहीं करती है, तो वह श्रुतज्ञानी होने पर भी आराधक नहीं बनती है ।**

❑ जीवन के अंतिम समय में भी जो साधक आत्मा भाव शल्य का उद्धरण स्वरुप प्रायश्चित्त का स्वीकार नहीं करती है, वह आत्मा बोधि दुर्लभ और अनंत संसारी बनती है ।

❑ माया का त्याग करके बालक भाव से जब कोई आलोचक अपने पापों की आलोचना करने के लिए उपस्थित हुआ हो, तब कदाचित वह कोई पाप को भूल जाय या सहसात्कार से उसका पाप स्वीकार करना रह जाय, तब भी मद-मान से रहित और मोक्ष मार्ग की श्रद्धावाला वह आराधक ही बनता है ।

❑ समाधि मरण पाने के लिए साधक आत्मा को कंदर्प, देवकिल्बिष, अभियोग, आसुरी और सम्मोह रुप पाँच संक्लेशकारी भावनाओं का त्याग करना चाहिए ।

❑ शरीर के प्रति रहा हुआ ममत्व ही हमारे दुःख का मुख्य कारण है । वास्तव में आत्मा शरीर से भिन्न है । इस सत्य को स्वीकार करने से ही शरीर पर रहा ममत्व भाव दूर हो सकता है ।

❑ शरीर के ममत्व का त्याग करने वाले सनत्कुमार चक्रवर्ती, पाँच पांडव, मेतार्यमुनि, चिलाती पूत्र, गजसुकुमाल महामुनि, अवंतिसुकुमाल महामुनि, अरणिकमुनि, खंधकमुनि के 500 शिष्य, सुकोशलमुनि आदि महापुरुषों ने सदा के लिए शरीर से मुक्त होकर अशरीरी अवस्था प्राप्त कर ली है । ग्रंथ में दिये गये इन महापुरुषों के उदाहरणों से साधक आत्मा को सहनशील एवं समाधि भाव में मग्न बनने सुंदर प्रेरणा मिलती है ।

छह छेद सूत्र

आगम ग्रंथ की रचना दो विभागो में विभक्त है ।

1. कृत जिन :– आगम ग्रंथों की रचना गणधर भगवंत, 14 अथवा 10 पूर्वधर महर्षि करते है, वे सारे कृत आगम है । जैसे आचारांग आदि द्वादशांगी ।

2. निर्यूहित जिन :– आगम ग्रंथों की रचना पूर्व में से उद्धरण करके की गयी हो, उसे निर्युहित आगम कहते है । जैसे ये छह छेद सूत्र ।

45 आगमों में 11 अंग, 12 उपांग, 10 पयन्ना के पश्चात् 6 छेद सूत्र आते है । इन छह छेद सूत्रों में 1. श्री निशीथ सूत्र, 2. श्री दशा श्रुतस्कंध सूत्र, 3. श्री बृहत् कल्प सूत्र, 4. श्री व्यवहार सूत्र, 5. श्री महानिशीथ सूत्र, 6. श्री जीतकल्प सूत्र का समावेश किया गया है ।

बारह प्रकार के तपाचार के भेदों में पहला अभ्यंतर तप प्रायश्चित्त है, जिसके 10 भेद है–आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, अनवस्थाप्य और पारांचित । इन दस भेद में से सातवें छेद प्रायश्चित तक का विस्तार से वर्णन होने से इन छह सूत्रों में होने से इनको छेद ग्रंथ कहा जाता है ।

यह छेद सूत्र अति रहस्यमय है । इन आगमों की वाचना प्रत्येक साधुओं को नहीं दी जा सकती है । मात्र परिपक्व साधुओं को ही इन ग्रंथों को पढने का अधिकार दिया जा सकता है । यदि अपरिपक्व साधुओं को इन्हें पढ़ने का अधिकार दिया जाय, तो वह धर्म शास्त्र ही शस्त्र की तरह स्व–पर उभय को अहितकर बन सकता है ।

छेद सूत्र की वाचना एकांत में एवं रात्रि में ही दी जाती है । जहाँ अज्ञानी या अगीतार्थ साधु बैठे हो, वहाँ इन छेद ग्रंथों की वाचना नहीं दी जाती है ।

इन छेद ग्रंथों में संयमजीवन के प्रारंभिक आचारों से लेकर प्रासंगिक, आकस्मिक और अंत समय तक के सारे आचारों का सुक्ष्म दृष्टि से वर्णन किया गया है । इस दृष्टि से संयम जीवन के सुविशुद्ध आचारों का पालन इन छेद सूत्र के बोध पर ही आधारित है ।

34

निशीथ सूत्र

पहला छेद सूत्र **श्री निशीथ सूत्र** है । प्राकृत भाषा में इस सूत्र का नाम **'निसीहं'** सूत्र है । 950 मूल श्लोक प्रमाण इस ग्रंथ पर निर्युक्तिकार श्री भद्रबाहुस्वामी द्वारा विरचित 7000 श्लोक प्रमाण निर्युक्ति है । इस ग्रंथ पर कुल 29000 श्लोक प्रमाण साहित्य वर्तमान में उपलब्ध है, जो सभी लगभग 1300 से अधिक वर्ष प्राचीन है ।

पूर्व काल में इस सूत्र को प्रथम अंग-श्री आचारांग सूत्र की चूलिका के साथ संलग्न माना जाता था, इस कारण आज भी आचारांग सूत्र की निर्युक्ति में इस ग्रंथ के आचार प्रकल्प और निशीथ, इस प्रकार दो नाम मिलते हैं । 14 पूर्व रूप दृष्टिवाद में से 9 वें पूर्व प्रत्याख्यान प्रवाद का यह अंग है ।

निशीथ शब्द का अर्थ होता है 'रात्रि' । रात्रि के समय कालग्रहण की क्रिया के साथ गुरुभगवंत अन्य किसी को भी सुनाई न दे इस प्रकार शिष्य के कान में इस सूत्र की वाचना देते है । इस कारण इस सूत्र का नाम निशीथ सूत्र है ।

गलती से उच्चारण पूर्वक इन सूत्र को देने में जो नुकसान हो सकता है, उसके लिए मच्छीमार का उदाहरण बताया है–

किसी गांव में एकबार एक आचार्य भगवंत साधु परिवार के साथ निर्दोष बस्ती में रहे हुए थे । वहाँ गुरुदेव अपने एक शिष्य को आगम पढ़ाना चाहते थे । आसपास में कोई नहीं है, ऐसा मानकर गुरुदेव ने शिष्य को कान में ही सूत्र कहे । उस सूत्र में `समुर्च्छिम मछलियाँ कैसे पैदा होती है' उसका वर्णन था । पास में रहने वाले मच्छीमार ने दीवार को कान देते हुए गुरु–शिष्य की बातों को सुन ली । दूसरे दिन रात्रि में देखते ही देखते सुने हुए सारे उपाय के अनुरुप वनस्पति, चूर्ण आदि सामग्री लाकर, उसमें से बहुत मछलियाँ पैदा कर दी । उसका व्यापार खुब बढा । वह लखपति बन गया ।

इस बात से अज्ञात गुरुदेव ने अन्यत्र विहार किया । कुछ काल के बाद पुनः विहार करते हुए आचार्य भगवंत वहाँ पधारे । कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए वह मच्छीमार हीरे–माणेक से भरा थाल लेकर आचार्य भगवंत के पास आया और उपकार व्यक्त करते हुए सारी बात बता दी । बात सुनकर आचार्य स्तब्ध हो गए । उन्हें अपनी भूल ख्याल में आ गई । वे सोचने लगे, 'अहो विपरीत रूप से सूत्र प्रदान करने से हजारों मछलियों के प्राण चले गये, उसमे मैं निमित्त बना । अब इस पाप को कैसे रोका जाय ?' धन के लोभ में यह अपना व्यापार तो बंद नहीं करेगा ! तो, अब क्या करना ? एक ओर लोभवृत्ति को रोकना शक्य नहीं है तो दूसरी ओर होने वाली हजारों मछलियों की हिंसा रोकना भी जरुरी है । निरुपाय बने आचार्य ने दुःखी हृदय से उसे दूसरी बात कही कि–

'इससे तुझे क्या मिला ? मेरे पास ऐसी विद्या है, जिससे सुवर्ण पुरुष की प्राप्ति हो सके ।' ऐसा कहकर आचार्य ने उसे बाघ पैदा हो ऐसा उपाय बताया । बंद कमरे में किये उस उपाय से मच्छीमार की मृत्यु हो गई और अन्तर्मुहूर्त में वह बाघ भी अदृश्य हो गया ।

यदि आचार्य ऐसा उपाय नहीं करते तो वह अपने पुत्रादि को समुर्च्छिम मछलियों का उपाय बताता जिससे हिंसा की परंपरा चालू ही रहती ।

इस दृष्टांत से ज्ञात होता है कि इन ग्रंथों की गुप्तता कितनी महत्त्वपूर्ण है । गंभीरता, परिपक्वता आदि गुणों से युक्त 16 वर्ष की उम्रवाला और कम से कम 3 वर्ष के चारित्र पर्याय वाला साधु ही इस सूत्र को पढने का अधिकारी है ।

20 उद्देशो में लगभग 1500 सूत्र वाले इस निशीथ सूत्र आगम के प्रारंभ में प्रायश्चित के प्रायोग्य स्खलनाओं का वर्णन किया है । तत्पश्चात् बताई गई विशेष संज्ञा में गुरुमासिक, लघुमासिक, गुरु-चातुर्मासिक और लघु-चातुर्मासिक का उल्लेख किया गया है । इन संज्ञा और स्खलनाओं को जानने वाला साधु ही अन्य को प्रायश्चित्त प्रदान करने का एवं स्वतंत्र विहार करने का अधिकारी बनता है । उपाध्याय पद आदि पदों के लिए निशीथ सूत्र का अध्ययन किया हुआ साधु ही योग्य है । इस सूत्र के अध्ययन

बिना साधु अपने पूर्व के सांसारिक संबंधिओं के घर में भिक्षा के लिए भी नहीं जा सकता है ।

साधु जीवन के प्रायोग्य उत्सर्ग मार्ग और अपवाद मार्ग को बताते हुए कहा है– **उत्सर्ग मार्ग यानी मूल मार्ग, जिसे टिकाने के लिए जो मार्ग अपनाया जाय वह अपवाद मार्ग है । अपवाद मार्ग के सेवन के समय पर जो उसे सेवन न करे तो वह विराधक बनता है । जैसे कि विहार करते हुए बीच में नदी आती हो तो अन्य मार्ग के अभाव में साधु यतनापूर्वक नदी में उतरे और उत्सर्गमार्ग की रक्षा के लिए अपवाद मार्ग का भी सेवन करे ।**

स्वाध्याय के विषय में कहा कि–जो साधु अस्वाध्याय में स्वाध्याय करे तो वह प्रायश्चित्त का भागी बनता हैं और जो साधु दिन–रात के पहले और अंतिम प्रहर में स्वाध्याय नहीं करता अथवा नहीं करने वाले की अनुमोदना करता है, वह साधु प्रायश्चित्त का भागी बनता है ।

35

दशाश्रुतस्कंध सूत्र

दूसरा छेद सूत्र **दशाश्रुत स्कंध सूत्र** है । पक्खी सूत्र में इस सूत्र का नाम प्राकृत भाषा में **'दसाओ'** शब्द से उल्लेखित है । इस आगम में 216 गद्यसूत्र एवं 52 पद्य सूत्र है । मूलगाथाएँ 1830 श्लोक प्रमाण है ।

10 प्रकार की दशाओं का वर्णन करने वाले इस सूत्र में 10 अध्ययन है । इस सूत्र के आठवीं पर्युषणा नाम की दशा में से ही अंतिम 14 पूर्वधर महर्षि **आचार्य श्री भद्रबाहुस्वामीजी म.सा.** ने बारसा सूत्र-कल्प सूत्र का उद्धरण किया था, जो प्रतिवर्ष भारतभर के हर संघ में पर्युषण पर्व दरम्यान पढ़ा जाता है ।

इस आगम सूत्र में साधु जीवन के आचारों का वर्णन किया है । साधु जीवन को निर्मल बनाने में उपयोगी अनेक आचार 10 अध्ययन के माध्यम से बताए है ।

1) असमाधि स्थान नाम की पहली दशा में स्वपर को असमाधि पैदा करने वाले 20 स्थान बताए है–जैसे किसी की पीठ पीछे निंदा करना । क्लेश–कलहकारी वचन बोलना । संघ में अथवा गण में विभाग पैदा हो ऐसे वचन बोलना आदि । साधुओं को इन असमाधि स्थानों का त्याग करना चाहिए ।

2) सबला नाम की दूसरी दशा में चारित्र की निर्मलता को नष्ट करे ऐसे अनाचारों का वर्णन है । जैसे–शय्यातर के घर से आहार-पानी आदि लेना । छह महिने में एक से अधिक बार गच्छांतर करना आदि ।

3) 33 आशातना नाम की तीसरी दशा में सद्गुरु संबंधी 33 आशातनाएँ बताई है । जैसे–गुरु वचन का स्वीकार नहीं करना, उन्हें प्रत्युत्तर नहीं देना, उनका तिरस्कार करना आदि ।

4) गणिसंपदा नाम की चौथी दशा में आचार्य भगवंतों के योग्य आठ प्रकार की गणि संपदाएँ बताई है । जो आचार्य होते है वे आचार, सूत्र, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोग और संग्रह परिज्ञा रुप आठ

गणि संपदाओं के धारक होते है । इन आठ संपदाओं से वे गच्छ का योग–क्षेम करते हैं ।

5) चित्तसमाधि नाम की पांचवी दशा में मन की समाधि के उपाय और लाभ बताए है। पाँच समिति, तीन गुप्ति, ब्रह्मचर्य की नौ वाड आदि के पालन से तथा शुभ ध्यान से चित्त समाधि मय बनता है। समाधिमय बना चित्त उत्तरोत्तर जातिस्मरण, शुभ स्वप्न दर्शन, देवदर्शन, अवधिज्ञान, मनःपर्यव ज्ञान, केवलज्ञान आदि दस स्थानों की प्राप्ति का कारण बनता है ।

6) उपासक प्रतिमा नाम की छठी दशा में श्रावक जीवन में स्वीकार करने योग्य सम्यग्दर्शन, व्रत, सामायिक आदि ग्यारह प्रतिमा का वर्णन है। प्रतिमा अर्थात् विशिष्ट प्रतिज्ञाएँ। इन प्रतिज्ञाओं के ग्रहण–पालन से श्रावक भी भव सागर को पार करता है ।

7) भिक्षु प्रतिमा नाम की सातवीं दशा में साधु जीवन में स्वीकार करने योग्य बारह प्रतिमाओं का वर्णन है । इन बारह प्रतिमाओं का पूरा काल 28 महिने, 22 दिन और 1 रात है, जिनके पालन से अवधिज्ञान आदि आत्मप्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

8) पर्युषणा नाम की आठवीं दशा में पर्युषण संबंधी विचारों का निर्देश किया है । भिन्न रुप से कल्पसूत्र इसी दशा का अंग होने से यहाँ विशेष वर्णन नहीं किया है ।

9) मोहनीय नाम की नौवीं दशा में मोह के 30 स्थानों का वर्णन है । कर्म बंध में मुख्य कारण इन 30 स्थानों का साधु–साध्वी को सर्वथा त्याग करना चाहिए। इन 30 स्थानों का वर्णन श्रमण सूत्र में किया गया है ।

10) आयति स्थान नाम की दसवीं दशा में नौ प्रकार के नियाणा (निदान) के अनर्थ का वर्णन है। भगवान महावीर के समवसरण में अपनी चतुरंगी सेना आदि ऋद्धि–सिद्ध के साथ वंदन करने आये महाराजा श्रेणिक और महारानी चेलणा को देख अनेक साधु–साध्वियों के मन मोह के वश होकर नियाणा करने की ओर आकर्षित हुए, तब भगवान महावीर ने नियाणा के अनर्थ बताते हुए कहा कि **''जो नियाणा करता है वह भविष्य में अवश्य दुःखी होता है ।''** इस हितशिक्षा का श्रवण कर वे साधु–साध्वी अपने नियाणें का त्याग कर, प्रभु के समक्ष प्रायश्चित्त कर निर्मल बने ।

दशा श्रुतस्कंध के हितोपदेश

1) अत्तुक्करिसो वज्जेअव्वो पयत्तेणं ।
प्रयत्नपूर्वक आत्मोत्कर्ष का त्याग करना चाहिये ।।

संसारी जीवों में दोषों की बहुलता और गुणों की अल्पता है, परंतु अभिमान से ग्रस्त आत्मा अपने अल्पगुणों को पाकर भी अभिमान करने लग जाती है ।

अपनी आत्मा में रहे दोषों को छिपाने से वे दोष पुष्ट होते जाते है और प्राप्त गुणों का अभिमान करने से वे गुण भी चले जाते हैं ।

आत्म-प्रशंसा की यह भूख आत्म साधना में बाधक है, परंतु मोहाधीन आत्मा इस तथ्य को समझ नहीं पाती है । उत्तम पुरुषों का लक्षण है कि वे कभी भी आत्म-प्रशंसा नहीं करते हैं । ठीक ही कहा हैं-

'बडे बडाइ न करे, बडे न बोले बोल ।
हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारो मोल ।।'

हीरा कभी भी अपने मुख से यह नहीं कहता हैं-मेरा लाख रुपए का मूल्य है ।

हे पुण्यात्मन् ! आज तेरी आत्मा में जो भी गुण प्रकट हुए है, वे सब क्षायोपशमिक भाव के है, अतः वे गुण आज है और कल चले भी जा सकते हैं । एक मात्र क्षायिक-भाव के ही गुण ऐसे होते हैं, जो आने के बाद वापस जाते नहीं हैं ।

जो गुण स्वयं रहने वाले न हो तो उन गुणों की प्राप्ति का क्या अभिमान करना ?

जो आत्मा समस्तगुणों से परिपूर्ण होती हैं, उसे अभिमान नहीं होता है और जो समस्त गुणों से पूर्ण नहीं है, उसे अभिमान करने का अधिकार ही नहीं है ।

उमास्वातिजी म. ने **प्रशमरति** ग्रंथ में लिखा हैं-**'जो आत्मा, आत्म-प्रशंसा करती है, वह आत्मा नीच गोत्र कर्म का बंध करती हैं, जिसके फलस्वरुप आत्मा अनेक भवों तक हल्के कुल में उत्पन्न होती है ।'** मुक्ति की अभिलाषी बनी साधक आत्मा को आत्म-प्रशंसा के पाप से सदैव दूर ही रहना चाहिये ।

2) विगई विगइ सहावं ।

जैन शास्त्रों में मद्य, मांस, मक्खन और शहद को महाविगई कहा है । इनकी उत्पत्ति में जीवों की भयंकर हिंसा भी होती है अतः इनका सर्वथा निषेध है ।

दूध, दही, घी, तैल, गुड और तली हुई मिठाई– यह छह भक्ष्य विगइ कहलाती है ।

साधु जीवन में शारीरिक अशक्ति, रोग, तप आदि के प्रसंगों में अल्प प्रमाण में भक्ष्य विगई सेवन की छूट हैं, परंतु इन भक्ष्य विगइयों का सेवन भी अधिक प्रमाण में नहीं होना चाहिये ।

ये विगइयाँ भी विकृति के स्वभाववाली है अर्थात् इनका सेवन करने से मन में कामवासना व विकार भाव पैदा होता है । हिंसक व तामसी आहार मनुष्य को क्रोधी बनाता है । रसप्रद और राजसी आहार मनुष्य को कामी बनाता है । सादा और सात्त्विक आहार मनुष्य को पवित्र बनाता है ।

एक बार मन में काम-वासना के संस्कार जागृत हो जाने के बाद उन संस्कारों को शांत करना बहुत ही कठिन हो जाता है । Prevention is better than cure. इलाज की अपेक्षा रोग पैदा न होने देना, ज्यादा अच्छा है ।

वैसे ही कामविकार पैदा हो और फिर उन्हें शांत करना, इसके बजाय तो काम विकार पैदा ही न हो, ऐसी सावधानी रखना ज्यादा श्रेष्ठ है । गोदाम में लगी आग को शांत करना तो भी आसान हैं, परंतु मन के भीतर पैदा हुई काम वासना की आग को शांत करना अत्यंत ही कठिन है ।

बाह्य निमित्तों को पाकर आत्मा के भीतर रहे कामवासना के संस्कार जागृत होते है ।

उद्भट वेष, उत्तेजक-आहार और अश्लील-दृश्य-ये कामवासना को उत्तेजित करनेवाले प्रबल निमित्त है ।

कामवासना पर नियंत्रण पाने के लिए विगइ युक्त आहार पर नियंत्रण बहुत ही जरुरी है ।

3) समणभावो सामन्नं अर्थात् समता भाव की साधना ही श्रमणपना है ।

अल्प शब्दों में साधुपने की व्याख्या करनी हो तो कह सकते है कि `समता भाव की जो साधना करे, वह साधु है ।

संसार में सर्वत्र कषायों की बोलबाला है । कहीं क्रोध के तुफान नजर आते है तो कहीं मान, माया और लोभ के !

जहाँ जहाँ कषायों की प्रवृत्ति है, वहाँ वहाँ अशांति की ही बोलबाला है । कषायों के अस्तित्व में शांति की आशा भी कैसे रख सकते है ?

साधु जीवन का स्वीकार अर्थात् समता की साधना का प्रारंभ ।

हर व्यक्ति के जीवन में पुण्य-पाप के उदय के फल स्वरुप अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ तो आने ही वाली हैं, परंतु पापोदय से प्राप्त प्रतिकूलताओं में समभाव की साधना करना, यही साधुता है ।

साधु जीवन के स्वीकार के बाद भी यदि जीवन में कषायों की प्रबलता हो तो वह वास्तविक श्रामण्य नहीं है । ममता का नाश हुए बिना जीवन में समता भाव प्राप्त नहीं होता है ।

ममता के नाश के लिए क्रोधादि कषायों का उपशमन भी बहुत जरुरी है ।

जब तक मन में कषायों की आग जीवंत रहेगी, तब तक समत्व भाव की प्राप्ति शक्य नहीं है । साधु का बाह्य वेष धारण करने मात्र से ही कोई साधु नहीं बन जाता है । वेष के साथ यदि जीवन में समता-शांति न हो तो वह वेष आत्मा के लिए भव निस्तारक नहीं बन पाता है ।

4) दिव्वावि कामभोगा अधुवा अर्थात् देवलोक में रहे देवताओं के कामभोग भी शाश्वत नहीं है ।

यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा देवताओं का आयुष्य खूब लंबा होता हैं, फिर भी उस आयुष्य का भी एकदिन अंत आ ही जाता है ।

देवताओं का जघन्य आयुष्य 10,000 वर्ष होता है और उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम का होता है, परंतु उस आयुष्य को भी समाप्त होते

कहां देर लगती है । इतने लंबे समय तक सुख भोगनेवाले देवताओं को भी तिर्यंच आदि गति याक्त एकेन्द्रिय में जाना पडता है ।

शास्त्र में लिखा हैं कि एक दिन में जितने देवताओं का आयुष्य पूरा होता है, उतनी संख्या में भी मनुष्य नहीं है ।

देवलोक में रहे असंख्य देवता मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय रुप एकेन्द्रिय में चले जाते है ।

मनुष्य के काम-भोग के साधन औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बने होते हैं, जब कि देवताओं के काम भोग के बाह्य पदार्थ वैक्रिय वर्गणा के पुदगलों से बने होते हैं ।

मनुष्य के भौतिक सुख की सामग्री अल्पकाल में ही बिगड जानेवाली होती है, जबकि देवताओं की सुख सामग्री वैक्रिय वर्गणा के पुदगलों से बनी होने के कारण दीर्घकाल तक टिक सकती है । परंतु वह भी सामग्री शाश्वत नहीं है, अतः देवताओं के वे सुख भी अनित्य और नाशवंत ही है ।

देवताओं के दिव्य सुख भी यदि नाशवंत हो तो मनुष्य के तुच्छ सुखों की तो क्या गिनती है ?

आज जिस पुरुष या स्त्री का सुंदर रुप हो, परंतु उसका वह रुप तो कभी भी नष्ट हो सकता है ।

खाने-पीने की सामग्री कितनी ही स्वादिष्ट क्यों न हो उसे बिगडते कहां देर लगती हैं ? अतः बाह्य सुख सामग्री में राग न करे ।

36

बृहत् कल्प सूत्र

तीसरा छेद सूत्र–**बृहत् कल्प सूत्र है ।** प्राकृत भाषा में इसे **'कप्पो'** नाम से जाना जाता है । इस आगम सूत्र को 14 पूर्वधर महर्षी **पूज्य आचार्य श्री भद्रबाहुस्वामीजी ने प्रत्याख्यान प्रवाद नाम के पूर्व में से उद्धरण किया है ।** गद्यशैली में रहे इस आगम सूत्र का प्रमाण–473 श्लोक प्रमाण है ।

इस आगम ग्रंथ पर पू.आ. श्री भद्रबाहुस्वामीजी कृत 625 श्लोक प्रमाण निर्युक्ति, श्री संघदासगणिजी कृत 7600 श्लोक प्रमाण लघुभाष्य तथा इससे अतिरिक्त 12000 श्लोक प्रमाण बृहत् भाष्य, 11000 श्लोक प्रमाण विशेष चूर्णि, 16000 श्लोक प्रमाण चूर्णि, 42600 श्लोक प्रमाण बडी टीका जिसमे 4600 श्लोक के रचयिता पूज्य आ. श्री मलयगिरि म. है, तथा अन्य के रचयिता पूज्य आचार्य श्री क्षेमकीर्तिसूरि म. है । एवं 1400 श्लोक प्रमाण लघु टीका भी उपलब्ध है । इस प्रकार कुल मिलाकर **91698** श्लोक प्रमाण साहित्य इस आगम पर आज भी उपलब्ध है ।

छह उद्देशा एवं 81 अधिकार वाले इस आगम सूत्र में साधु जीवन के मूलगुण और उत्तरगुण में होने वाले अतिचारों का प्रायश्चित्त बताया है । साधु जीवन में सामान्य रुप से उत्सर्ग मार्ग के अचरण की ही आज्ञा है, परंतु विशेष द्रव्य–क्षेत्र–काल और भाव के अनुसार अपवाद मार्ग का सेवन भी प्रभु की ही आज्ञा है । उत्सर्ग मार्ग का आचरण सर्वथा निर्दोष है, जबकि अपवाद मार्ग का आचरण, निर्दोष भी है और सदोष भी । प्रवचन की रक्षा के निमित्त किया गया अपवाद मार्ग का सेवन निर्दोष है एवं शारीरिक निर्बलता आदि के कारण किया गया अपवाद मार्ग का सेवन सदोष है ।

उत्सर्ग और अपवाद मार्ग की आराधना में जानते हुए अथवा नहीं

जानते हुए होने वाली विराधना–दोष है तथा उन दोषों की शुद्धि कर पुनः उत्सर्ग मार्ग में जुडकर चारित्र में स्थिर बनना प्रायश्चित्त है ।

उत्सर्ग मार्ग, अपवाद मार्ग, दोष और प्रायश्चित्त के विषय का अति गहन वर्णन इस छेद सूत्र में किया गया है । नाम के अनुसार इस सूत्र में विस्तार से साधु जीवन के कल्प अर्थात् आचारों का वर्णन किया है ।

आचार मर्यादा के कुछ अंश पर अवलोकन करते है–

''यदि आचार्य, उपाध्याय, गणिनी, प्रवर्तिनी आदि अपने आश्रित शिष्य को सम्यग् मार्ग न बताए और शिष्य दुर्गति में जाय तो उसके प्रायश्चित्त के भागी गुरु बनते है ।'' यह इस आगम ग्रंथ में बताया है ।

–जंगल के मार्ग में विहार करना हो तब सार्थवाह आदि के साथ कैसा व्यवहार करना, किस तरह उनसे बात करनी, जरुरत पड़ने पर वृद्ध साधु–बाल साधु के परिणाम की स्थिरता के लिए अपवाद मार्ग में वैसी परिस्थिति सर्जन होने पर किस तरह आचरण करना, आदि निर्देश इस ग्रंथ में है ।

–विहार करते समय रास्ते में नदी आती हो तो उसे पार उतरने की विधि इस ग्रंथ में है ।

–साधु–साध्वी को वर्षा चातुर्मास में विहार अकल्प्य है, मात्र हेमंत और ग्रीष्म ऋतु में ही विहार करना कल्प्य है ।

–विहार क्षेत्र की मर्यादा–पूर्व दिशा में अंग देश–मगध देश तक, पश्चिम दिशा में स्थूणादेश तक, उत्तर दिशा में कुणाल देश तक और दक्षिण दिशा में कोशांबी तक विहार करना साधु–साध्वी के लिए योग्य है । जहाँ ज्ञानादि गुणों की वृद्धि हो वहाँ ही विचरण करना चाहिए ।

–आधे योजन की मर्यादा के बाहर से लाया आहार–पानी अकल्प्य है ।

–वस्त्र आदि वोहरना चातुर्मास दरम्यान अकल्प्य है, मात्र शेष काल में ही कल्प्य है ।

–चातुर्मास दरम्यान चारों दिशा में मात्र सवा योजन का ही अवग्रह ग्रहण करना योग्य है ।

बृहत् कल्पसूत्र के हितोपदेश

1) जं इच्छसि अप्पणतो, जं च न इच्छसि अप्पणतो ।
तं इच्छ परस्स वि, एत्तियगं जिणसासणयं ।।

अर्थात्– जो व्यवहार तुम अपने प्रति चाहते हो, वह व्यवहार दूसरों के प्रति करो । जो व्यवहार तुम अपने प्रति नहीं चाहते हो, वह व्यवहार दूसरों के प्रति मत करो, यही समग्र जिनशासन का सार है ।

हम यही चाहते है कि कोई भी व्यक्ति हमारे साथ बुरा व्यवहार न करें । कोई हमें अपशब्द न बोलें । हमारी निंदा न करें । हमसे ईर्ष्या न करें । हमें कटु शब्द न कहे । हमारे साथ माया-कपट न करें । हमें धोखा न दे । हम से झूठ न बोलें । हमारी किसी वस्तु की चोरी न करें । हमारे साथ अच्छा व्यवहार करें ।

...तो हमारा भी यह कर्तव्य हो जाता है कि हम किसी के साथ-बुरा व्यवहार न करे । किसी को अपशब्द न कहे । किसी की निंदा न करे । किसी से ईर्ष्या न करे । बातचीत दरम्यान किसी को भी कडवे शब्द न कहे । किसी के साथ माया प्रपंच न करे । किसी से झूठ न बोले । दूसरों की वस्तु बिना पूछे न ले । किसी की चोरी न करे । किसी के साथ व्यभिचार-अना चार न करे ।

दूसरें जीवों के प्रति जब आत्म-तुल्य भाव पैदा होता है, तब अपना व्यवहार उचित व्यवहार कहलाएगा ।

कोई व्यक्ति अपने साथ बुरा व्यवहार करे तो यह हमें पसंद नहीं पडता है तो हमारा भी कर्तव्य है कि हम दूसरों के साथ बुरा व्यवहार न करे । हम स्वयं बुरा व्यवहार करते जाय और दूसरों से अच्छे व्यवहार की अपेक्षा रखे, यह कहां तक न्याय कहलाएगा ?

यदि आप चाहते है कि आपका बेटा राम बने तो आपको भी दशरथ तो बनना ही पडेगा ।

कुदरत का यह नियम है कि हम दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करेंगे तो कुदरत भी हमारे साथ अच्छा व्यवहार करेगी और हम दूसरों के साथ बुरा व्यवहार करेंगे तो कुदरत भी हमारे साथ बुरा ही व्यवहार करेगी ।

ठीक ही कहा हैं-As you sow, so shall you reap जैसा बीज बोओगे, वैसा ही फल पाओंगें ।

37

व्यवहार सूत्र

चौथा छेद सूत्र – **व्यवहार सूत्र है ।** प्राकृत भाषा में इसे **'ववहारो'** नाम से जाना जाता है । इस आगम सूत्र को 14 पूर्वधर महर्षी पूज्य आचार्य श्री भद्रबाहुस्वामीजी ने नौवें पूर्व के आचार वस्तु के 20 वें प्राभृत में से उद्धरण कर रचा है ।

इस आगम का मूल प्रमाण 373 श्लोक जितना है । यह गद्यात्मक ग्रंथ है । इस ग्रंथ पर 6400 श्लोक प्रमाण भाष्य, 12000 श्लोक प्रमाण चूर्णि, 34000 श्लोक प्रमाण वृत्ति उपलब्ध है । कुल मिलाकर 52773 श्लोक प्रमाण विशाल साहित्य आज भी उपलब्ध है ।

कल्प और व्यवहार, आचार के ही समानार्थी शब्द है । इस अपेक्षा से श्री बृहत् कल्प सूत्र और व्यवहार सूत्र परस्पर पूरक है । प्रायश्चित्त के प्रायोग्य जो विषयों का वर्णन बृहत् कल्प सूत्र में नहीं है, वह इस व्यवहार सूत्र में बताया है, जो इसकी विशेषता है ।

❑ अतिचारादि की शुद्धि रुप व्यवहार के पाँच प्रकार है । 1. आगम व्यवहार, 2. श्रुत व्यवहार, 3. आज्ञा व्यवहार, 4. धारणा व्यवहार, 5. जीत व्यवहार । आगम व्यवहार की उपस्थिति में श्रुतादि व्यवहार नहीं होता । आगम व्यवहार की अनुपस्थिति में ही श्रुत आदि क्रमशः व्यवहार होते है । **ये पाँच प्रकार के व्यवहार साधन है, गण की शुद्धि करने वाले गीतार्थ आचार्यादि व्यवहारी है एवं गण में रहे साधु–साध्वी व्यवहर्तव्य है ।** संक्षेप में कहे तो–गण में रहे संयमी को जीवन में लगे दोषों की शुद्धि करना व्यवहार है । शुद्धि कराने वाले आचार्यादि–व्यवहारी है । तथा जिनके अतिचारों की शुद्धि होती है वे व्यवहर्तव्य है ।

❑ आलोचक आचार्य जाति, कुल की संपन्नता वाले दश गुणों से युक्त होने चाहिए । उनके चार भेद है–

1. जो संयम, तप की साधना के साथ ग्लान साधु की सेवा कर सके–वे उभयतर ।

2. जो मात्र संयम, तप की साधना कर सके-वे आत्मतर ।

3. जो मात्र अन्य ग्लानादि साधु की सेवा कर सके-वे परतर । और

4. जो एक समय में मात्र तप संयम की साधना अथवा अन्य ग्लानादि साधु की सेवा कर सके-वे अन्यतर ।

❑ स्थविर के तीन प्रकार–जो साधु 60 वर्ष से अधिक उम्र वाले हो, वे जाति स्थविर अथवा वय स्थविर । जो साधु स्थानांग और समवायांग आदि का ज्ञानी हो वे सूत्र (ज्ञान) स्थविर और जो 20 वर्ष से अधिक संयम पर्याय वाले हो वे प्रव्रज्या (पर्याय) स्थविर कहलाते है ।

❑ संयम जीवन के तीन वर्ष के बाद आचारांग सूत्र, चार वर्ष के बाद सूत्रकृतांग सूत्र, पाँच वर्ष के बाद दशाश्रुत स्कंध, बृहत् कल्प और व्यवहार सूत्र, आठ वर्ष के बाद स्थानांग और समवायांग सूत्र, दस वर्ष के बाद व्याख्या प्रज्ञाप्ति (भगवति सूत्र) ग्यारह वर्ष के बाद लघुविमान–प्रविभक्ति आदि बारह वर्ष के बाद अरणोपपातिक सूत्र, तेरह वर्ष के बाद उपधान श्रुत आदि चौदह वर्ष के बाद स्वप्नभावना, पंद्रह वर्ष के बाद चारणभावना, सोलह वर्ष के बाद तेजोनिःसर्ग, सत्रह वर्ष के बाद आशीविष भावना, अठारह वर्ष के बाद दृष्टिविष भावना, उन्निस वर्ष के बाद दृष्टिवाद और बीस वर्ष के बाद सभी श्रुत को पढने का अधिकार होता है ।

❑ गुरु भगवंतों की निश्रा में रहकर इस सूत्र को विधिपूर्वक पढने से साधु द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव को पहिचान कर, स्व–पर के आत्म कल्याण करने वाला बनता है ।

38

महानिशीथ सूत्र

पाँचवाँ छेद ग्रंथ–**श्री महानिशीथ सूत्र है ।** प्राकृत में इसका नाम **'महानिसीहं'** है । निशीथ सूत्र की अपेक्षा यह सूत्र विशाल होने से इसे महानिशीथ कहते है । पूर्व के काल में यह आगम सूत्र आठ अध्ययन और 83 उद्देशों में विभक्त था । काल के प्रभाव से लुप्त होते इस सूत्र को पूज्य आचार्य श्री हरीभद्रसूरीश्वरजी आदि आचार्यों ने उपलब्ध अंशो का संकलन किया, जो वर्तमान में छह अध्ययन और दो चूलिका के रुप में 4544 श्लोक प्रमाण उपलब्ध है । इस आगम सूत्र पर कोई चूर्णि, भाष्य या टीका उपलब्ध नहीं है ।

अपेक्षा से इस सूत्र को गुरु मध्य रात्रि में ही शिष्य को प्रदान कर सकते है, इसलिए इसका नाम महानिशीथ सूत्र है । तपश्चर्या की अपेक्षा से अन्य सभी योगोद्वहन में इस सूत्र क योगोद्वहन करने में निरंतर 52 आयंबिल तप होते है, जो अत्यंत कठिन साधना है । इस साधना को करने के पश्चात् ही साधु भगवंत अन्य साधु को दीक्षा प्रदान, योगोद्वहन की विधि एवं श्रावक वर्ग को उपधान तप, व्रत उच्चरण, संघमाला आदि क्रियाएँ कराने के अधिकारी बनते है । तथा इस सूत्र में बताई वर्धमान विद्या की साधना का अधिकार भी प्राप्त होता है ।

साधु जीवन की विशुद्धि के लिए इस आगम सूत्र में, सरलता, आचार शुद्धि, अपनी हुई गलतियों को सुधारने की तत्परता, वैराग्य भाव, आज्ञाधीनता आदि गुणों पर खूब भार दिया है । छह अध्ययन और दो चूलिका के मुख्य विषय इस प्रकार है–

1) शल्योद्धार नाम का पहला अध्ययन है । शल्य दो प्रकार के है–द्रव्य शल्य और भाव शल्य । पैर में कांटा लगना अथवा आँख में कचरे का तिनका जाना द्रव्य शल्य है । जबकि पाप का आचरण करना भाव शल्य है । द्रव्य शल्य के कारण शरीर में असह्य वेदना होती है फिर भी

उपायों के द्वारा उससे मुक्त बना जा सकता है । परंतु राग द्वेष के अधिन बनकर जीवन में जो हिंसा, झूठ, चोरी, मैथून, परिग्रह आदि अठारह पापों का आचरण होता है, उन सभी पापों की माया रहित होकर मन से निंदा, गुरु साक्षी से गर्हा और आलोचना का स्वीकार न होने पर वे पाप अनेक भवों तक दु:खदायी बनते है । अत: माया आदि शल्य के त्यागपूर्वक पाप की आलोचना अवश्य करनी चाहिए ।

2) कर्मविपाक नाम का दूसरा अध्ययन है । कर्म के कारण ही जीव को चार गतियों में परिभ्रमण करना पडता है । चार गतियों के कारण और उसमें होने वाले दु:ख कर्म के ही अधीन है । दु:ख से बचने के लिए कर्म के आश्रव द्वारों को अटकाना, एक मात्र मार्ग है । कामराग को जीतने की प्रेरणा देने के लिए ग्रंथकार ने पुरुष के उत्तमोत्तम आदि छह भेद बताकर सुंदर प्रेरणा दी है ।

3) कुशील लक्षण नाम का तीसरा अध्ययन है । निमित्त-वासी हमारी आत्मा सुशील और सज्जनों के संग से सुशील बनती है और कुशील और दुर्जन के संग से कुशील बनती है । कुशील आत्माओं से बचने के लिए इस अध्ययन में ज्ञानादि पांच आचार में कुशील आत्माओं का वर्णन किया है । **ज्ञान के आचारों में उपधान तप की विधि एवं उसका महत्त्व इस अध्ययन में बताया है ।**

4) कुशील संसर्ग नाम का चौथा अध्ययन है । इस अध्ययन में कुशील साधु के संग से अनंत काल तक संसार परिभ्रमण को पाने वाले सुमति श्रावक का दृष्टांत दिया गया है ।

5) नवनीत सार नाम का पाँचवां अध्ययन है । इस अध्ययन में गच्छ, गच्छवासी साधु, गच्छाचार्य का स्वरुप और गच्छ के आचारों का भंग करते वज्र नाम के आचार्य का दृष्टांत दिया है । तथा जिनवचन की अन्यथा प्ररुपणा करने वाले सावद्याचार्य का भी दृष्टांत दिया है ।

6) गीतार्थ विहार नाम का छठा अध्ययन है । माया का त्याग कर शुद्ध मन से आलोचना लेने वाले नंदीषेण महामुनि आदि ने भव संसार पार किया और माया के साथ शुद्ध मन से आलोचना न करके लक्ष्मणा

साध्वी आदि ने भव संसार बढाया है । इस प्रकार आलोचना के चार प्रकार बताकर आत्म हितकर उपदेश दिया है ।

इनसे अतिरिक्त प्रथम चूलिका में प्रायश्चित्त के स्थान और यथायोग्य प्रायश्चित्त का वर्णन है तथा दूसरी चूलिका में गोविंद ब्राह्मण, सुषेण आदि के दृष्टांत द्वारा आलोचना शुद्धि का महत्त्व बताया है ।

इस सूत्र का आधार श्री गच्छाचार प्रकीर्णक सूत्र माना जाता है ।

इस सूत्र के चौथे अध्ययन में बताया सुमति श्रावक का प्रेरणादायी दृष्टांत:

सुमति और नागिल दोनों भाई थे । पूर्व काल में दोनों वैभव, समृद्धि के मालिक थे । पूर्व भव के पापोदय से एक बार वैभव समृद्धि नष्ट हो गयी । दोनों गरीब बन गए । धनोपार्जन करने के लिए स्वदेश को छोडकर परदेश जा रहे थे । बीच रास्ते में पाँच साधु और एक श्रावक का संग हुआ । उनके साथ में चलते–चलते एक बार नागिल ने सुमति को कहा कि–``श्री नेमिनाथ भगवान ने जैसा कुशील साधुओं का आचार बताया है, वैसा ही आचार इन साधुओं का लगता है । अतः इनका संग करने जैसा नहीं है ।'' सुमति को यह ठीक नहीं लगा । उसे साधुओं में कोई दोष नहीं लगा । दोनों भाईओं के बीच चर्चा हुई । अंत में सुमति ने अपनी जीद नहीं छोडी और इन्ही के पास दीक्षा लेने का निर्णय कर दिया ।

वास्तव में वे साधु कुशील थे । सुमति ने उनके पास दीक्षा ले ली । अंत में सभी साधु आलोचना किये बिना मरकर व्यंतर बने । कुशील के संग से सुमति परमाधामी देव बना । वह दीर्घ काल तक संसार में परिभ्रमण करेगा । नागिल ने कुशील का त्याग किया अंत में दीक्षा लेकर मोक्ष में गया ।

39

जीतकल्प सूत्र

छठा छेद ग्रंथ–**श्री जीतकल्प सूत्र** है । प्राकृत भाषा में इसे **जीयकप्पो** कहते है । इस सूत्र के रचयिता युगप्रधान आचार्य **श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण है ।** इस आगम का मूल 1133 श्लोक प्रमाण था, जो विक्रम संवत 1612 तक उपलब्ध था, बाद में लुप्त हो गया ऐसा माना जाता है । वर्तमान में मात्र प्रायश्चित्त अधिकार उपलब्ध है जो 103 गाथा प्रमाण है । इस पर ग्रंथकर्ता श्री जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण विरचित 2606 श्लोक प्रमाण भाष्य है, पूज्य आचार्य श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी म.सा. रचित विस्तृत चूर्णि है तथा आ. श्री तिलकाचार्य रचित वृत्ति भी है । यति जीत कल्प और श्राद्ध जीत कल्प ग्रंथ का आधार यही सूत्र है ।

पूर्वकाल में छह छेद सूत्र में पंचकल्प सूत्र का समावेश होता था परंतु उसके भाष्य और चूर्णि उपलब्ध होने पर, मूल सूत्र लुप्त हो जाने से पूर्वाचार्यों ने उसके स्थान पर यह जीतकल्प सूत्र को समावेश किया है ।

प्रायश्चित्त देने की विधि को व्यवहार कहते है । यह व्यवहार पाँच प्रकार के है–

1) 14 पूर्वधर, 10 पूर्वधर, 9 पूर्वधर, केवलीज्ञानी भगवंतो का व्यवहार-**आगम व्यवहार** है । उन आगम व्यवहारी के कल्प, आचार–मर्यादाएँ भिन्न प्रकार की होती है ।

2) अंग अथवा उसके सिवाय का व्यवहार जिनके द्वारा चलता है वह **श्रुत व्यवहार** है ।

3) प्रायश्चित्त लेने–देने में जो संकेत किये गये हो उन संकेतो को समझकर जो व्यवहार किया जाता है, वह **आज्ञा व्यवहार** है ।

4) पूर्व परंपरा से जो संकेत प्राप्त हुए अथवा जो प्रायश्चित्त प्राप्त हुए उसकी धारणा कर रखना, वह **धारणा व्यवहार** है ।

5) समय–समय पर जिन शास्त्र सापेक्ष व्यवहारों को, सभी गीतार्थ आचार्य बिना विरोध के नक्की करे वह **जीत व्यवहार** कहलाता है ।

आगम संबंधी व्यवहार के विच्छेद होने पर जीत संबंधी व्यवहार प्रारंभ हुआ, जो आज तक चालू है और भविष्य में भी चालू रहेगा । इस जीत व्यवहार का वर्णन इस आगम सूत्र में होने से यह आगम जीत व्यवहार कहलाता है ।

इस आगम में संयम जीवन को निर्मल बनाने प्रायश्चित्त का वर्णन किया है । कर्म के उदय से संयम जीवन की साधना में प्रमाद के वश होकर जो स्खलनाएं होती है, उन स्खलनाओं से लगे अतिचारों और अनाचारों के विषय में प्रायश्चित्त की सूक्ष्मता का निरुपण इस ग्रंथ में किया गया है ।

प्रायश्चित्त के 10 प्रकार है– 1. आलोचना, 2. प्रतिक्रमण, 3. तदुभय, 4. विवेक, 5. व्युत्सर्ग, 6. तप, 7. छेद, 8. मूल, 9. अनवस्थाप्य, 10. पारांचित । इस दस प्रकार के प्रायश्चित्त में से किस दोष का कौन-सा और कितना प्रायश्चित्त देना वह अधिकार गुरु भगवंत का है । प्रायश्चित्त के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव संबंधी अनेक भेद है । प्रायश्चित्त करने वाला ग्लान है या निरोगी है, कमजोर है या शक्तिशाली है, तप कर सकता है या नही कर सकता है, स्थविर कल्पी है या जिन कल्पी है आदि का विचार द्रव्य संबंधी है । प्रायश्चित्त स्वीकार का क्षेत्र कैसा है, रुक्ष है या स्निग्ध है, गृहस्थ भावित है या नहीं है, आदि का विचार क्षेत्र संबंधी है । प्रायश्चित्त का काल कैसा है ? गर्मी है, ठंडी है या वर्षा है आदि का विचार काल संबंधी है । तथा प्रायश्चित्त स्वीकार करने वाले के भाव कैसे है, वह श्रद्धा संपन्न है या श्रद्धा रहित है, परिणत है, अपरिणत है या अतिपरिणत है आदि का विचार भाव संबंधी है ।

गुरु भगवंत इस प्रकार के दोषों को जानकर निष्पक्ष भाव से यथायोग्य प्रायश्चित्त देते है और शिष्यगण भी निष्कपट भाव से उसका पालन करते है । कदाचित् छद्मस्थता वश प्रायश्चित्त दान में गुरु की भूल भी हो जाय तो भी समर्पित भाव से शिष्य उस प्रायश्चित्त का निर्वाह करे तो अवश्य ही उसकी आत्मा विशुद्ध होती है ।

चार मूल सूत्र

साधु जीवन के प्रारंभ से ही जिन सूत्रों का उपयोग होता है, वे मूल सूत्र चार है–1. आवश्यक सूत्र, 2. दशवैकालिक सूत्र, 3. उत्तराध्ययन सूत्र 4. ओघ निर्युक्ति – पिंड निर्युक्ति ।

40

आवश्यक सूत्र

पहला मूल सूत्र–**आवश्यक सूत्र है ।** वर्तमान में प्राप्त आवश्यक सूत्र के रचयिता पंचम गणधर, प्रभुवीर के प्रथम पट्टधर श्री सुधर्मा स्वामी भगवंत है । इसका मूल मात्र 135 श्लोक प्रमाण है । इस पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका आदि साहित्य 2,37,143 श्लोक प्रमाण है । इस सूत्र पर चौदह पूर्वी श्री भद्रबाहू स्वामीजी महाराज रचित निर्युक्ति है, श्री जिनभद्र गणि रचित विशेषावश्यक भाष्य है, पूज्य श्री जिनदास गणि महत्तर रचित चूर्णि है, पूज्य श्री मलयगिरिजी महाराज रचित वृत्ति है तथा मलधारी पूज्य आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि महाराज ने भाष्य पर टीका की रचना की है । इसके अलावा अनेक महापुरुषों ने इस पर अनेक वृत्ति की रचनाएं की है ।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध श्रीसंघ में प्रतिदिन छह आवश्यक की आराधना होने से इस सूत्र का सर्वाधिक महत्त्व है ।

आवश्यक शब्द के समानार्थी शब्द रुप अवश्यकरणीय, ध्रुव, निग्रह, विशुद्ध, अध्ययन षट्क, वर्ग, न्याय, आराधना और मार्ग बताये है । इनसे विशिष्ट–जो आत्मा को गुणों से सुवासित करे वह आवासक, अथवा विश्व के प्रत्येक गुणों का निवास स्थान यानी आवासक (आवश्यक) है ।

छह आवश्यक के रुप में इस सूत्र में छह अध्ययन है–

1. सामायिक अध्ययन – सामायिक अर्थात् राग–द्वेष से रहित चित्त की अवस्था । संसार के हर द्वंद्व–सुख-दु:ख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, शत्रु-मित्र, कांच-मणि, जीवन छोटा-मरण आदि में समता भाव धारण करना सामायिक है । साधना का प्रारंभ सामायिक से होता है और साधना की सिद्धि भी सामायिक से होती है । इस अध्ययन में नमस्कार महामंत्र से लेकर सामायिक सूत्र स्वरूप करेमि भंते का समावेश है ।

2. चतुर्विंशति स्तव अध्ययन – सर्वोच्च समता को पाये हुए ऐसे 24 तीर्थंकरों की स्तवना रुप नामस्तव–लोगस्स सूत्र से यह आवश्यक किया जाता है । इस अध्ययन में इस अवसर्पिणि काल में हुए 24 तीर्थंकरों के नाम पूर्वक स्तवना-वंदना की गई है ।

3. वंदन अध्ययन – रत्नत्रयी के शुद्ध प्ररुपक एवं देव और धर्म तत्त्व के बीच में रहे, दीपक की तरह प्रकाशित करने वाले गुरु है । उनके प्रति हुई आशातना की क्षमायाचना स्वरुप यह अध्ययन है । साधुओं कों रजोहरण एवं श्रावकों को चरवला और मुहपत्ती में गुरु चरण की स्थापना कर बारह आवर्तो के द्वारा वंदना करते हुए क्षमा मांगी जाती है ।

4. प्रतिक्रमण अध्ययन – व्रत छोटा-नियमों की मर्यादाओं में राग–छोटा-द्वेष और प्रमाद वश हुए अतिक्रमण से पीछे लौटने के लिए आत्म-शुद्धि का मुख्य आवश्यक इस अध्ययन में है । साधुओं के लिए श्रमण सूत्र–पगामसिज्जाय सूत्र और श्रावकों के लिए श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र–वंदित्तु सूत्र आदि का इस अध्ययन में समावेश है ।

5. कायोत्सर्ग अध्ययन – प्रतिक्रमण आवश्यक के द्वारा आत्म-साक्षी से निंदा और गुरु-साक्षी से गर्हा करने के बाद आत्मा की विशेष शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग का आवश्यक इस अध्ययन में है ।

6. प्रत्याख्यान अध्ययन – कर्मबंध के कारण रुप पाप व्यापारों के त्याग की प्रतिज्ञा करना प्रत्याख्यान है । मुख्य रुप से चार आहार संबंधी प्रत्याख्यान सूत्र द्वारा यह आवश्यक किया जाता होने से इस अध्ययन में पच्चक्खाण का समावेश है ।

41

दशवैकालिक सूत्र

दूसरा मूल सूत्र **'दशवैकालिक सूत्र'** है । प्राकृत में इसे **'दसवेयालियं'** नाम से जाना जाता है । वीर संवत 72 में, भगवान महावीर की चौथी पाट पर हुए **पूज्य आचार्य श्री शय्यंभवसूरीश्वरजी म.सा.** ने अपने सांसारिक पुत्र अल्पायुषी **श्री मनकमुनि** के आत्म कल्याण हेतु इस सूत्र की रचना की थी ।

दस अध्ययन और दो चुलिका स्वरुप इस सूत्र का मूल 835 श्लोक प्रमाण है । इस पर पूज्य आ. श्री भद्रबाहुस्वामीजी द्वारा रचित 550 श्लोक प्रमाण निर्युक्ति है, पूर्वाचार्य रचित 63 श्लोक का भाष्य है, **पू.आ. श्री हरिभद्रसूरि म.** द्वारा रचित 7000 श्लोक प्रमाण बृहद्वृत्ति है, पू.आ. श्री जिनदासगणि द्वारा रचित 7000 श्लोक प्रमाण चूर्णि है तथा श्री अगस्त्थसिंह गणि रचित 5000 श्लोक प्रमाण चूर्णि है, पूज्य आचार्य श्री तिलकाचार्य रचित 7000 श्लोक प्रमाण बृहद् वृत्ति है, पूज्य आचार्य श्री सुमतिसूरिजी रचित 2600 श्लोक प्रमाण लघु वृत्ति तथा अंचलगच्छीय श्री विनयहंस गणि द्वारा रचित 2100 श्लोक प्रमाण लघुवृत्ति है । इनसे अतिरिक्त खरतरगच्छीय श्री समयसुंदरसूरिजी रचित टीका भी उपलब्ध है ।

दशवैकालिक सूत्र साधु की माता के समान है । साधु जीवन में कैसे चलना, कैसे बोलना, कैसे बैठना, कैसे सोना, कैसे खाना आदि प्रत्येक कार्य में यतना के पालन पूर्वक पाप कर्म से कैसे बचा जाय इसलिए एक माता के हितोपदेश समान यह सूत्र है । साधु जीवन का प्राण यह दशवैकालिक सूत्र है । दीक्षा के बाद प्राचीन काल में आचारांग सूत्र के शस्त्र परिज्ञा अध्ययन के अभ्यास के बाद बडी दीक्षा प्रदान की जाती थी, जो अब इस दशवैकालिक सूत्र के चौथे **षड्जीवनिकाय अध्ययन** के बाद की जाती है । पाँचवे पिंडैषणा अध्ययन के अभ्यास के बाद ही गोचरी वहोरने का एवं सातवें वाक्य शुद्धि अध्ययन के अभ्यास के बाद ही प्रवचन देने का अधिकार दिया जाता है ।

नूतनदीक्षित साधु श्री दशवैकालिक सूत्र को कंठस्थ कर उसके शब्दार्थ, वाक्यार्थ, महावाक्यार्थ तक का अभ्यास करे और उसके अनुसार संयम जीवन का पालन करे तो भाव साधुत्व की अवश्य प्राप्ति होती है ।

इस सूत्र में दस अध्ययन है, जो पूज्य श्री शय्यंभवसूरिजी महाराज ने विकाल समय में रचे थे । इसलिए इसका नाम दशवैकालिक सूत्र है ।

दस अध्ययन के नाम :– (1) द्रुम पुष्पिका, (2) श्रामण्यपूर्वक, (3) क्षुल्लकाचार, (4) षड्जीवनिकाय, (5) पिंडैषणा, (6) धर्मार्थकथा, (7) वाक्यशुद्धि, (8) आचार प्रणिधि, (9) विनयसमाधि, (10) सभिक्खु ।

निर्युक्तिकार श्री भद्रबाहु स्वामी महाराज का कथन है कि इन दस अध्ययनों में से चौथा अध्ययन–आत्मप्रवाद नाम के पूर्व में से, पाँचवाँ अध्ययन–कर्म प्रवाद पूर्व में से, सातवाँ अध्ययन सत्यप्रवाद पूर्व में से और शेष अध्ययन प्रत्याख्यान पूर्व की तीसरी वस्तु में से उद्धरण किये गये है ।

तथा महाविदेह क्षेत्र में विचरण करते विहरमान श्री सीमंधर स्वामी के पास से यक्षा साध्वीजी को प्राप्त (1) `रतिवाक्या' (2) `विविक्त चर्या' नाम की दो चूलिकाएँ पूर्वाचार्यों ने इस सूत्र के साथ जोडी है ।

दस अध्ययन और दो चूलिका स्वरुप इस ग्रंथ में साधु जीवन के महाव्रतादि मूलगूण और पिंडविशुद्धि आदि उत्तर गुणों का वर्णन होने से यह आगम चरणकरणानुयोग का महान ग्रंथ है, जो पाँचवें आरे के अंत तक विद्यमान रहेगा ।

दशवैकालिक ग्रंथ के हितोपदेश

(1) धम्मो मंगलमुक्किट्ठं; अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।।

अर्थात–अहिंसा, संयम और तप रुप धर्म, उत्कृष्ट मंगल है । जिसका मन धर्म में सदा लगा हो, उसे देवता भी नमस्कार करते है ।

आपको मंगल पसंद है, आप सदैव अमंगल से दूर रहना चाहते हैं । अमंगल तो दूर रहा, अमंगल की भविष्यवाणी भी आपको पसंद नहीं है ।

यदि आप अपने जीवन में मंगल चाहते है तो आपको अहिंसा, संयम और तप धर्म की आराधना करनी चाहिये ।

- अहिंसा अर्थात् किसी भी जीव की हिंसा नहीं करना ।
- संयम अर्थात् इन्द्रियों पर अंकुश रखना ।
- तप अर्थात् आहार की आसक्ति को तोडने के लिए और आत्म-भाव में रमणता प्राप्त करने के लिए त्याग-धर्म की आराधना करना ।

संयम और तप धर्म भी अहिंसा को ही पुष्ट करते है ।

- यदि आप अपने जीवन को अहिंसक बनाना चाहते हो तो आपको अपने जीवन में संयम व तप को आत्मसात् करना ही होगा ।

जहाँ जीवन में संयम का अभाव होगा, वहाँ जीवन में पांच इन्द्रियों के विषय-सुखों में आसक्ति होगी, जहाँ आसक्ति होगी, वहाँ हिंसा हुए बिना नहीं रहेगी ।

पांच इन्द्रियों के विषय भोगों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप में अवश्य हिंसा रही हुई है । यदि आप हिंसा के पाप से, पर-पीडन से बचना चाहते है तो आपको अपना जीवन संयमित बनाना होगा ।

संयम की पुष्टि के लिए जीवन में तप धर्म का सेवन अनिवार्य है ।

जीवन में तप के आचरण से आहार की आसक्ति टूटती है ।

अहिंसा, संयम और तप धर्म का सच्चा आराधक, उपासक देवताओं को आदरणीय, पूजनीय, वंदनीय और नमस्करणीय हो जाता है ।

(2) जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सये ।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ ।।

अर्थात्–यतनापूर्वक चलनेवाला, यतनापूर्वक खडा रहने वाला, यतनापूर्वक बैठनेवाला, यतनापूर्वक सोने वाला, यतनापूर्वक भोजन करनेवाला और यतनापूर्वक बोलनेवाला पाप कर्म का बंध नहीं करता है ।

जीवन है तो प्रवृत्ति भी होगी ही । चलना, घूमना, खाना-पीना, सोना-उठना-बैठना आदि प्रवृत्तियाँ जीवन के साथ जुडी हुई है ।

संसारी जीव सर्वथा प्रवृत्ति-मुक्त नहीं बन सकता है, संसार में जीना है तो कुछ न कुछ प्रवृत्ति करनी ही पडेगी...इसके साथ ही संसार की प्रवृत्ति ऐसी है कि जो राग अथवा द्वेष पैदा कराए बिना नहीं रहती है ।

महावीर परमात्मा ने इस शाश्वत सूत्र के द्वारा हमें वह उपाय बतलाया है कि जीवन में प्रवृत्ति करते हुए भी हम अपने आपको कर्म के बंधन से बचा सकते है...और वह सर्वश्रेष्ठ उपाय है-जयणा / यतना ।

प्रभु महावीर कहते हैं-हे महानुभाव ! तूं प्रवृत्ति करते हुए भी पाप-कर्म से बचना चाहते हैं तो इसका श्रेष्ठ उपाय है-यतना ।

- जब भी तूं चलता है तो यतनापूर्वक चल !
- जब भी तूं खडा रहता है तो यतनापूर्वक खडा रह !
- जब भी तूं बैठता है तो यतनापूर्वक बैठ ।
- जब भी तूं शयन करता है तो यतनापूर्वक शयन कर ।
- जब भी तूं भोजन करता है तो यतनापूर्वक भोजन कर ।
- जब भी तूं बोलता हैं तो यतनापूर्वक बोल ।

यतना में वह शक्ति रही हुई है जो तेरी आत्मा को पाप के बंधन से मुक्त रख सकेगी । अयतना से चलने पर, जीव-हिंसा नहीं होने पर भी जीव-हिंसा का पाप लगता है ।

अयतना पूर्वक की गई सभी प्रवृत्ति कर्मबंध का ही कारण है ।

जीवन में हर पल सावधानी से जीओ ! जीवन की हर पल होश में जीओ । 'मैं क्या कर रहा हूँ ? गलत कर रहा हूँ या सही कर रहा हूँ ?' इसका लेखा-जोखा अपने पास रखो ।

यदि आत्म-जागृति नहीं है तो तुम्हारी हर क्रिया तुम्हारे लिए पापबंध का कारण बन जाएगी ।

(3) जाविंदिया न हायंति ताव धम्मं समायरे ।

अथात्–इन्द्रियों की हानि न हो तब तक धर्म कर लेना चाहिये ।

मोक्ष मार्ग की आराधना-साधना में आगे बढने के लिए सशक्त इन्द्रियाँ भी जरुरी हैं, क्योंकि हम इन्द्रियों के माध्यम से ही विशिष्ट कोटि की धर्म-आराधना कर सकते हैं ।

प्रभु-दर्शन, स्वाध्याय और जीव-दया आदि के लिए चक्षु-इन्द्रिय (आँख) की अपेक्षा रहती है ।

जिनवाणी श्रवण करना हो, प्रभु भक्ति के गीत स्तोत्र सुनने हो तो कर्णेन्द्रिय (कान) जरुरी है ।

गुणीजनों के गुणगान, उपदेश प्रदान और पर-प्रशंसा आदि में रसनेन्द्रिय (जीभ) भी जरुरी है ।

चिंतन, सोच-विचार और धर्मध्यान के लिए मन अर्थात् नो-इन्द्रिय की भी अपेक्षा रहती है ।

जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ क्षीण हो गई हैं, उस व्यक्ति को आराधना-साधना में भी कई तकलीफें आती हैं ।

जिसकी आँखें चली गई अथवा कमजोर हो गई, ऐसा व्यक्ति प्रभु के दर्शन नहीं कर पाता है ।

जिस व्यक्ति के कान कमजोर हो गए हो ऐसा व्यक्ति जिनवाणी का श्रवण नहीं कर पाता है ।

इन्द्रियों की आसक्ति पतन का मार्ग है तो इन्द्रियों का सदुपयोग आत्म-उत्थान का मार्ग है, अतः जब तक इन्द्रियाँ सशक्त हैं, तब तक आत्म-कल्याण में सहायक ऐसी धर्म आराधनाएँ कर लेनी चाहिये ।

इन्द्रियों की हानि होने के बाद धर्म की आराधना कठिन हो जाती है, क्योंकि हर प्रकार के धर्म की आराधना में इन्द्रियों की अपेक्षा तो रहती ही है ।

(4) जया निव्विंदिए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।
तया चयइ संजोगं, सब्भिंतर बाहिरं ।।

अर्थात्–जब साधक के मन में दिव्य और मनुष्य संबंधी भोगों में निर्वेद-वैराग्यभाव उत्पन्न होता है तब वह साधक बाह्य और अभ्यंतर संयोगों का त्याग कर देता है ।

वैराग्य होने के बाद त्याग करना आसान है । हृदय में तीव्र आसक्ति का भाव पडा हो तो थोडा भी त्याग करना कठिन हो जाता है ।

बाह्य-पदार्थों के त्याग के साथ यदि हृदय में रही पदार्थों की आसक्ति का त्याग नहीं हो तो उस त्याग का कोई अर्थ नहीं है ।

त्याग और वैराग्य में, वैराग्य की प्राप्ति दुष्कर है । हृदय में वैराग्य भाव आ जाय तो छह खंड के विशाल साम्राज्य का त्याग करना भी आसान हो जाता हैं और वैराग्य भाव न हो तो मुट्ठी भर दाने का त्याग करना भी कठिन हो जाता है ।

सच्चा साधक वही कहलाता है जो बाह्य और अभ्यंतर परिग्रह का सद्भाव पूर्वक त्याग करता है, यह त्याग तीव्र वैराग्यभाव के बिना संभव नहीं है ।

शरीर में डायाबिटीज् हो तो व्यक्ति मिठाई छोड देता है । शरीर में B.P. या हार्ट की तकलीफ हो तो व्यक्ति घी का छोड देता है । परंतु उस त्याग का कोई विशेष मूल्य नहीं हैं, क्योंकि वह त्याग इच्छापूर्वक का नहीं है ।

इसी प्रकार बलात्कार से किया गया धन का त्याग भी वास्तव में त्याग नहीं है । धन की मूर्च्छा दूर होती हो, उस प्रकार से दिया गया दान ही वास्तविक दान कहलाता है ।

बाह्य पदार्थों के संयोग से भी उन पदार्थों के प्रति रही मूर्च्छा अधिक खतरनाक है । बाह्य पदार्थों के त्याग की साधना, भीतर रही मूर्च्छा को तोडने के उद्देश्य से ही होनी चाहिये ।

(5) चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचन्ति मूलाइं पुणब्भवस्स

अर्थात्–'ये चारों कषाय मिलकर आत्मा के पुनर्जन्म की परंपरा के मूल का सिंचन करते रहते है ।'

वृक्ष के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए जड का अस्तित्व अनिवार्य है । वृक्ष की जड काट दी जाय तो वह वृक्ष लंबे समय तक टिक नहीं सकता है । जड़ कटने के साथ ही वृक्ष का अस्तित्व खतरे में आ जाता है । बस, इसी प्रकार क्रोध, मान, माया और लोभ रुपी चार कषाय आत्मा के संसार परिभ्रमण रुपी वृक्ष का सिंचन करते रहते है ।

जल से जड का सतत सिंचन किया जाय तो वह वृक्ष मजबूत बनता जाता हैं बस, इसी प्रकार ये चारों कषाय आत्मा की भव-परंपरा को मजबूत करते रहते है ।

विश्व-विजेता बनना सरल है । क्रोध-विजेता बनना कठिन है ।

पुण्य और शस्त्र के बल से वासुदेव तीन खंड के अधिपति बन जाते है तो चक्रवर्ती छ खंड के अधिपति बन जाते है । 32000 मुकुटबद्ध राजा चक्रवर्ती के चरणों में नतमस्तक रहते हैं । अनेक देवतागण भी चक्रवर्ती का सानिध्य करते हैं परन्तु महा-आश्चर्य हैं कि छ खंड जीतनेवाला चक्रवर्ती भी अपने आप पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता है । वह अंतरंग शत्रुओं के आगे घुटने टेक देता है । युद्ध में लाखों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला भी क्रोधादि कषायों के सामने हार खा जाता है । इसीलिए तो कहा गया है कि विश्व विजेता बनना सरल है, परन्तु क्रोध विजेता बनना अत्यंत कठिन है ।

अंग्रेजी में I हमेशा Capital लिखा जाता है । वह I अहंकार का प्रतीक है । अहंकार का नाश किए बिना तुम परमात्मा के द्वार पर नहीं पहुँच सकोंगे । माया कपट का आश्रयकर आत्मा संसार को ही बढाती है ।

धन, स्त्री और सत्ता की प्राप्ति का लोभ भी महा-अनर्थकारी है, लोभ से भी आत्मा का संसार बढता जाता है ।

धन के लोभ से मम्मणसेठ मरकर साँतवीं नरक में चला गया । स्त्री के लोभ में रावण मरकर चौथी नरक में चला गया । सत्ता के लोभ से कोणिक ने अपने पिता को ही जेल में डाल दिया और अपना संसार बढा दिया ।

सावधान रहे इन चारों कषायों से ! ये कषाय अपनी आत्मा के ज्ञानादि आत्म धन को लूटनेवाले ही है ।

(6) मुहादाई मुहाजीवी दोवि गच्छंति सोग्गइं ।।

(दश 5-1-1)

अर्थात्–निष्काम भाव से दान देनेवाले और निष्काम भाव से दान लेनेवाले दोनों सद्गति प्राप्त करते हैं ।

दिया गया दान आत्मा के लिए तभी लाभकारी बनता है, जब वह निष्काम भाव से दिया जाता है ।

जिस दान के बदले में भौतिक सुख-सामग्री पाने की लालसा होती है, वह दान आत्म-हितकर नहीं बनता है ।

अनादिकाल से आत्मा में स्वार्थवृत्ति रही हुई है, इस स्वार्थवृत्ति के कारण व्यक्ति जो कुछ भी कार्य करता है, उसमें उसे कुछ पाने की भावना रहती है । वह किसी को कुछ भी देगा तो उसके बदले कुछ अधिक पाने की इच्छा करेगा ।

बस, इसी स्वार्थवृत्ति के कारण उसका किया हुआ धर्म भी आत्म-हितकर नहीं बनता है ।

साधु-साध्वी आदि सुपात्र में जो भी दान करना है, वह निःस्वार्थ भाव से ही करना चाहिये । मुक्ति मार्ग साधक साधु को भी निःस्वार्थ भाव से ही भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।

इस प्रकार जो निःस्वार्थ भाव से भिक्षा देता है और निःस्वार्थ भाव से भिक्षा ग्रहण करता हैं, उन दोनों का आत्म-कल्याण हुए बिना नहीं रहता है ।

स्वार्थ वृत्ति ही अपनी साधना को मलिन बना देती है ।

'मैं साधु महात्मा को दान दूंगा । तो मुझे विशेष लाभ प्राप्त होगा ।' इस प्रकार की मलिन भावनापूर्वक दान नहीं देना चाहिये । मलिन भावना से जो दान दिया जाता है, उससे मलिन पुण्य का बंध होता है, जिस पुण्य के उदय से सुख की सामग्री तो मिलती हैं, परंतु व्यक्ति की धर्म भावना नष्ट हो जाती है ।

साधु को भी एक मात्र संयम धर्म के पालन के उद्देश्य से ही आहार ग्रहण करने का होता है ।

(7) न यावि मोक्खो गुरु-हीलणाए ।

अर्थात्–गुरु की हीलना करनेवाला कभी मोक्ष प्राप्त नहीं करता है ।

यदि शीघ्र मोक्ष पाना हो तो सद्गुरु की सेवा-भक्ति व उपासना अवश्य करनी चाहिये ।

मोह के गाढ अंधकार में सन्मार्ग की राह दिखानेवाले सद्गुरु ही है ।

जिसने सद्गुरु के चरण कमल पकड लिये, वह आत्मा अल्पकाल में ही भवसागर को पार कर देती है ।

ऐसे सद्गुरु जो मोक्ष की राह दिखाते हैं, उनकी कभी भी हीलना (निंदा) नहीं करनी चाहिये ।

सद्गुरु की आशातना-हीलना करने से आत्मा अपना अनंत संसार खडा कर देती है, अतः अपनी पूरी शक्ति लगाकर सद्गुरु की तो उपासना ही करनी चाहिये ।

विशुद्ध देव-तत्त्व और धर्म-तत्त्व की सही पहचान करानेवाले गुरु भगवंत ही है ।

दीपक की ज्योत से बाहर का अंधेरा दूर होता हैं, जब कि सद्गुरु तो ऐसे दीपक है, जो अपनी आत्मा में रहे हुए मोह-मिथ्यात्व और अज्ञानता के गाढ अंधकार को दूर कर देते हैं ।

अपने उपकारी गुरु की हीलना करने से कुलवालक मुनि का अधःपतन हुआ, जब कि ऊपर से दंडे की मार पडने पर भी सद्गुरु के प्रति रहे पूर्ण बहुमान और समर्पण-भाव के कारण चंडरुद्राचार्य के नूतन-दीक्षित शिष्य को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई थी ।

सद्गुरु की आज्ञा का पालन, उनकी सेवा-भक्ति, समर्पण भाव से आत्मा ऊपर उठती हैं, जब कि उनकी घोर आशातना करने से आत्मा दीर्घ काल तक संसार में भटकती है ।

गुरु की हीलना करनेवाली आत्मा को भविष्य में आत्म उत्थान की सामग्रियाँ सहजता से उपलब्ध नहीं होती है । गुरु की भक्ति कम होगी तो चलेगा, परंतु उनकी आशातना तो बिल्कुल नहीं होनी चाहिये ।

(8) पिट्ठिमंसं न खाइज्जा

अर्थात्–पीठ पीछे किसी की निंदा नहीं करनी चाहिये ।

जिसके जीवन में दोष-दृष्टि होती है, ऐसा व्यक्ति दूसरों की निंदा किए बिना नहीं रहता है । निंदा करने में फायदा कुछ भी नहीं है, जब कि नुकसान का पार नहीं है । दूसरों की निंदा करके हम अपना दुश्मन ही खडा करते हैं ।

इस जीभ के द्वारा जब हम किसी व्यक्ति में रहे सद्‌गुणों की प्रशंसा करते हैं तो भविष्य में वे सद्‌गुण हमारे जीवन में भी आते हैं और इस जीभ के द्वारा जब हम किसी व्यक्ति में रहे दुर्गुणों की निंदा करते हैं, तब भविष्य में वे ही दुर्गुण हमारे जीवन में आए बिना नहीं रहते हैं ।

जीभ का सही उपयोग तो आत्म-निंदा और पर-प्रशंसा है । अर्थात् अपने जीवन में जो कुछ भी दोष हो, वे दोष परमात्मा और सद्‌गुरु के आगे प्रकट करने चाहिये । इस प्रकार आत्म-निंदा करने से धीरें धीरें जीवन में से दोषों का ह्रास होता जाता है और जीवन में गुणों की वृद्धि होती है ।

दूसरे व्यक्ति के जीवन में सद्‌गुण दिखाई दे तो उस सद्‌गुण की सच्चे हृदय से प्रशंसा करनी चाहिये । दूसरों के जीवन में रहे सद्‌गुणों की प्रशंसा करने से वे सद्‌गुण हमारे जीवन में अवश्य आते हैं । पर-निंदा का रस अत्यंत ही खतरनाक है । भोजन के छह रस और काव्य के नौ रस से भी निंदा का रस बढ जाता है ।

निंदा करना जैसे बुरा है, उसी प्रकार निंदा सुनना भी उतना ही बुरा है । निंदा सुनने वाला निंदक को प्रोत्साहित करता है ।

निंदा करनेवाले को कोई श्रोता नहीं मिले तो वह कब तक निंदा करेगा ? निंदक व्यक्ति किसी में रहे सद्‌गुणों की प्रशंसा नहीं कर सकता है, क्योंकि उसे सर्वत्र दोष ही दिखाई देते हैं । किसी के गुण देखने में वह अंध तुल्य होता है ।

कौएँ को रात में दिखाई नहीं देता हैं और उल्लु को दिन में दिखाई नहीं देता हैं, क्योंकि कौआ रात में और उल्लु दिन में अंध होता हैं, उसी प्रकार निंदक व्यक्ति किसी के गुण देखने में दिन में उल्लु व रात में कौएँ जैसा ही होता है । प्रकृति ने जीभ को खूब कोमल बनाई हैं, परंतु

आश्चर्य है कि मानवी उस कोमल जीभ से कोमल शब्दों का उच्चारण नहीं कर पाता हैं ।

ठीक ही कहा हैं-

'तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चिहुं ओर ।
वशी करण यह मंत्र है, तज दो वचन कठोर ।।

मीठी, मधुरी वाणी के द्वारा हम दूसरों को अपने वश कर सकते हैं ।

(9)जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा ।
तं जाणमजाणं वा, न हणे न वि घायए ।।

अर्थात्–इस लोक में जितने भी त्रस और स्थावर जीव है, उनका जाने अनजाने में साधक हनन न करे और न कराए ।

इस संसार में जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उन सभी प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है । किसी भी प्राणी को मरना पसंद नहीं है । जैसे आप जीना चाहते हो, उसी प्रकार संसार के सभी प्राणी, चाहे वे क्षुद्र जंतु हो या चाहे विशालकाय हाथी हो, वे सभी जीना पसंद करते हैं, अतः जानबुझकर अथवा अनजाने में भी उन प्राणियों का घात नहीं करना चाहियें ।

प्रकृति का यह सनातन नियम है, `तुम दूसरे प्राणियों को जीवन दोंगें तो तुम्हें जीवन मिलेगा और तुम निर्दोष-प्राणियों को निष्कारण मौत के घाट उतारोंगे तो तुम्हें बेमौत मरना पडेगा ।

'तुम जो दूसरों को दोंगें, वो ही तुम्हे मिलनेवाला हैं ।'

तुम निर्दोष जीवों को मौत दोंगें तो तुम्हें मौत ही मिलेगी ।

तुम दूसरे जीवों को जीवन दोंगें तो तुम्हें जीवन मिलेगा ।

दीर्घ आयुष्य, सुंदर रुप, आरोग्य, सर्वत्र प्रशंसा इत्यादि अहिंसा धर्म के आचरण के ही फल है ।

यदि आप अपने जीवन में अहिंसा धर्म का फल चाहते हो तो आपको अपने जीवन में अहिंसा धर्म को आत्मसात् करना होगा । अहिंसा को आत्मसात् किए बिना अहिंसा के फल की प्राप्ति संभव नहीं है ।

सर्वविरति चारित्रधर्म अंगीकार करनेवाली आत्माएँ जगत् में रहे समस्त त्रस और स्थावर जीवों को जीवनपर्यंत अभयदान देने की घोषणा करती है ।

इस कारण वे सर्वथा निर्भय होते है । जगत् में सच्चा निर्भय वही हैं, जो दूसरों को भयमुक्त करता है ।

(10) मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा ।

अर्थात्–सामग्रियों में आसक्ति-ममता, मूर्च्छा रखना ही परिग्रह हैं, ऐसा महर्षि (भगवान महावीर) ने कहा है ।

उपरोक्त सूत्र में **'परिग्रह'** की व्याख्या बहुत ही सुंदर रुप से की गई है । बाह्य वस्तुओं का संग्रह वास्तव में परिग्रह नहीं हैं, बल्कि उन पदार्थों के प्रति अपने मन के भीतर रही हुई तीव्र-आसक्ति ही महा-परिग्रह है । जब तक बाह्य-पदार्थों के प्रति रही हुई अंतरंग-मूर्च्छा, आसक्ति दूर नहीं होगी, तब तक बाह्य पदार्थों का किया गया त्याग भी त्याग नहीं कहलाएगा ।

बाह्य वस्तुओं का त्याग कर देना आसान हैं, परंतु उन पदार्थों के प्रति रही हुई आसक्ति का त्याग करना, अत्यंत ही कठिन कार्य है, अतः जब तक वह आसक्ति दूर नहीं होगी तब तक व्यक्ति सच्चे मायने में त्यागी नहीं कहला सकता है ।

तन से उपवास करने पर भी यदि मन सतत आहार के विचारों में ही डूबा रहता हो तो वह वास्तव में उपवास नहीं कहलाएगा । सही उपवास वही है, जिससे मन में रही आहार की लालसा-आसक्ति टूटती हो । काया से उपवास करने पर भी मन, आहार के विचारों में खोया रहता हो तो वह उपवास अपूर्व-कर्म-निर्जरा का साधन नहीं बन पाता है । बस, इसी प्रकार बाहर से भौतिक पदार्थों का त्याग करें, परंतु मन उन्हीं पदार्थों के उपभोग के विचारों में डूबा रहता हो तो वह त्याग भी अत्याग ही है ।

बाह्य पदार्थों की प्राप्ति का अस्तित्व होने पर भी जिसके मन में से पदार्थों की आसक्ति टूट गई हो वह व्यक्ति बाह्य दृष्टि से भोगी होते हुए भी ज्ञानियों की दृष्टि में त्यागी ही है ।

भरत महाराजा छह खंड के अधिपति चक्रवर्ती थे । 32,000 मुकुटबद्ध राजा जिनके चरणों में नत-मस्तक होते थे । देवांगना जैसी 64,000 स्त्रियों के वे अधिपति थे । इतना ढेर सारा बाह्य-परिग्रह होने पर भी भरत महाराजा को आरीसा भवन में केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई थी...इसका मुख्य कारण वे उन सब भौतिक सामग्रियों के बीच भी **अनासक्त-योगी** थे । आसक्ति का बंधन टूट जाय तो मोक्ष हथैली पर है और आसक्ति का बंधन न टूटे तो किया गया त्याग भी वास्तव में त्याग नहीं है ।

बाह्य-त्याग भी अंतरंग आसक्ति के बंधन को तोडने के ध्येय से होना चाहिये ।

42

उत्तराध्ययन सूत्र

तीसरा मूल सूत्र–**'उत्तराध्ययन सूत्र'** । प्राकृत में यह सूत्र **'उत्तरझयणाई'** नाम से जाना जाता है । अपने निर्वाण काल को नजदीक जानकर भगवान श्री महावीर स्वामी ने अपापापूरी नगरी में रचित अंतिम समवसरण में सोलह प्रहर की धर्मदेशना प्रदान की । इस धर्म देशना में, प्रभु ने पुण्य–पाप के विपाक को बताने वाले 55-55 अध्ययनों के साथ नहीं पूछे हुए 36 प्रश्नों के रूप अपृष्ट व्याकरण की प्ररूपणा की । वही 36 अध्ययन उत्तराध्ययन सूत्र रुप में हमे प्राप्त होते है ।

सूत्र का मूल 2000 श्लोक प्रमाण है जिस पर निर्यक्ति, चूर्णि, टीका, वृत्ति आदि 1,14,708 श्लोक प्रमाण अन्य साहित्य रचा गया है । इस अपेक्षा से देखे तो सर्वाधिक रचनाएं इस ग्रंथ पर हुई है ।

यह सूत्र अंग बाह्य कालिक सूत्रों में प्रथम माना गया है । इस आगम सूत्र में चारों अनुयोग के विषय है, फिर भी धर्म कथाओं के माध्यम से उपदेश की प्रधानता होने से चूर्णिकार ने इसे धर्मकथानुयोग में गिना है ।

निर्युक्तिकार श्री भद्रबाहु स्वामीजी ने इसमें रहे 36 अध्ययनों के चार विभाग किये है– 1) जिनभाषित, 2) अंग प्रभव, 3) प्रत्येक बुद्ध रचित, 4) संवाद–समुदित ।

जिनमें दसवाँ **'द्रुम पुष्पिका अध्ययन'** परमात्मा महावीर के द्वारा प्रकाशित है ।

दूसरा **'परीषह अध्ययन'** दृष्टिवाद में से उद्धरण किया गया है ।

आठवाँ `कापिलीय अध्ययन' प्रत्येक बुद्ध कपिल केवली द्वारा कहा गया है ।

तेइसवाँ **'केशीगौतम अध्ययन'** संवाद स्वरुप है । इस प्रकार ग्रंथ और अध्ययन के रचयिता के विषय में भिन्न भिन्न मान्यताएँ है, जिसका निर्णय विशिष्ट ज्ञानी ही कर सकते है ।

पूर्व काल में यह सूत्र श्री आचारांग सूत्र के बाद में पढा जाता

था, इसलिए इसे उत्तर + अध्ययन के रुप में उत्तराध्ययन सूत्र कहा जाता है । वर्तमान में दशवैकालिक सूत्र के बाद इस सूत्र को पढा जाता है । उसके बाद आचारांग सूत्र पढा जाता है ।

36 अध्ययन और उसका संक्षिप्त उपदेश

1) विनय अध्ययन – गुरु की आज्ञा को यथार्थ पालन करने वाला ही सच्चा विनीत शिष्य है । इस अध्ययन में विनीत शिष्य के लक्षण बताए है ।

2) परीषह जय अध्ययन – 22 परिषह साधना मे बाधक नहीं बल्कि साधना में साधक है । इन्हें समतापूर्वक सहन करना चाहिए ।

3) चतुरंगीय अध्ययन – मनुष्यजन्म, शास्त्र श्रवण, श्रद्धा और आचरण अति दुर्लभ है । अतः प्रमाद का त्याग कर प्राप्त हुए अवसर को सफल करना चाहिए ।

4) प्रमाद–अप्रमाद अध्ययन – प्रमाद का त्याग कर भारंड पंखी की तरह अप्रमत्त बनो, क्योंकि प्रमाद ही आत्मा का परम शत्रु है ।

5) अकाममरणीय अध्ययन – साधना में असमर्थ शरीर के बंधन से छुटने का प्रयास समाधि मरण है ।

6) क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय अध्ययन – साधु प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रखता है ।

7) उरभ्रीय अध्ययन – इन्द्रिय के विषय से पुष्ट हुए शरीर का परिणाम मरण ही है ।

8) कापिलीय अध्ययन – सामुद्रिक शास्त्र आदि मिथ्याश्रुत के प्रयोग बताने वाला सुसाधु नहीं, बल्कि कुसाधु है ।

9) नमिप्रव्रज्या अध्ययन – ``जो जलता है वह मेरा नहीं और मेरा है वह जलता नहीं ।''–नमिराजर्षि के इन वचनों से अपने मन को अन्यत्व भावना से भावित करे ।

10) द्रुम पत्रक अध्ययन – हे गौतम ! एक समय भी प्रमाद करने जैसा नहीं है ।

11) बहुश्रुत पूजा अध्ययन – क्रोध, प्रमाद, रोग, आलस्य, मान आदि दोषों को छोडकर जो विनीत बनता है, वही बहुश्रुत बनता है ।

12) हरिकेशीय अध्ययन – जाति के मद से हरिकेशी चांडाल बने, दीक्षा और तप से कर्म क्षय कर गये ।

13) चित्तसंभूतीय अध्ययन – भौतिक सुख का निदान करने जैसा नहीं है । निदान का फल परिणाम में दुःखदायी होता है ।

14) इषुकारीय अध्ययन – ज्ञानगर्भित वैरागी को संसार के लाखों प्रलोभन लुब्ध नहीं कर सकते ।

15) सभिक्षु अध्ययन – साधु जीवन के सद्गुणों से विभूषित मुनि ही सच्चा भिक्षु है ।

16) ब्रह्मचर्य समाधि अध्ययन – नौ वाड के पालन और पुद्गल में अनासक्त आत्मा ही ब्रह्मचर्य पालन कर सकती है ।

17) पापश्रमणीय अध्ययन – स्वाध्याय को छोड, जो खा-पीकर सोता रहे, वह पापश्रमण कहलाता है ।

18) संयत अध्ययन – चक्रवर्ती राजा भी आत्मकल्याण के लिए संयम जीवन का पालन करते है ।

19) मृगापुत्रीय अध्ययन – नरक के कष्टों के सामने संयम के कष्ट अंश मात्र भी नहीं है ।

20) महानिर्ग्रंथीय अध्ययन – धर्म रहित बडा राजा भी अनाथ है ।

21) समुद्रपालीय अध्ययन – अपनी पूजा-सत्कार में मान न करे और निंदा-टीका में दीनता न करे ।

22) रथनेमीय अध्ययन – भोगों का त्यागकर पुनः भोगों को पाने की इच्छा करने वाले, वमन को चाटने वाला कुत्ते से भी हल्का है ।

23) केशिगौतमीय अध्ययन – काल के प्रभाव से जब प्रज्ञा घटती है, दोष बढते है, तब धर्म मर्यादाँए अधिक सख्त करनी चाहिए ।

24) प्रवचन माता अध्ययन – द्वादशांगी स्वरुप समस्त प्रवचन का सार अष्ट प्रवचन माता है । उसके पालन में ही साधु की सच्ची सुरक्षा है ।

25) यज्ञीय अध्ययन – मात्र नाम से नहीं बल्कि, समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी बना जाता है ।

26) सामाचारी अध्ययन – जो दश प्रकार की चक्रवाल सामाचारी का पालन करते है, वे मोक्ष में जाते हैं, गये हैं और जाएंगे ।

27) खलुंकीय अध्ययन – अविनीत शिष्य-अक्कड बैल की तरह गुरु को भी नुकसान पहुँचाता है ।

28) मोक्षमार्ग गति अध्ययन – दर्शन-छोटे-ज्ञान-चारित्र-तप ये मोक्षमार्ग के चार कारण है ।

29) सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययन – वैयावच्च के द्वारा जीव तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करती है ।

30) तपोमार्गगति अध्ययन – तप के बिना आत्मा कर्म से रहित नहीं बनती है ।

31) चरणविधि अध्ययन – मोक्ष की प्राप्ति के लिए आत्महितकारी आलंबनों का ग्रहण और अहितकारी का त्याग करना चाहिए ।

32) प्रमाद स्थानीय अध्ययन – शब्दादि विषयों का त्याग ही संसार के दु:खों से मुक्ति का उपाय है ।

33) कर्मप्रकृति अध्ययन – पूर्व ग्रहण किये कर्मों की निर्जरा के लिए सदा प्रयत्न करना चाहिए ।

34) लेश्या अध्ययन – कृष्ण, नील और कापोत लेश्या अप्रशस्त है और तेज, पद्म और शुक्ल लेश्या प्रशस्त है ।

35) अणगार अध्ययन – अणगार साधु संलेखना द्वारा शरीर को और अभ्यंतर पुरुषार्थ से कर्म को छोडता है ।

36) जीवाजीव विभक्ति अध्ययन – साधु को जीव–अजीव के यथार्थ स्वरुप को जानकर संयम में रति करनी चाहिए ।

इन 36 अध्ययनों में 1, 3, 4, 5, 6, 10 नंबर के अध्ययन उपदेशात्मक है, 7, 8, 9, 12, 13, 14, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 25, 27 नंबर के अध्ययन धर्मकथा स्वरुप है, 2, 11, 15, 16, 17, 24, 26, 32, 35 नंबर के अध्ययन आचार दर्शक है और 28, 29, 30, 31, 33, 34, 36 नंबर के अध्ययन सैद्धांतिक स्वरुप है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के हितोपदेश

1) चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणी उ जंतुणो ।

अर्थात्–संसार में परिभ्रमण कर रही आत्मा को मनुष्यत्व, जिनवाणी श्रवण, श्रद्धा और संयम में पुरुषार्थ-ये चार वस्तुएँ अत्यंत ही दुर्लभ है ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा महावीर प्रभु ने अंतिम देशना में चार वस्तुओं को अत्यंत ही दुर्लभ बताते हुए कहा कि चार गतियों में भ्रमण कर रही आत्मा को मनुष्य भव की प्राप्ति अत्यंत ही दुर्लभ है । क्योंकि मनुष्य संख्याता Countable हैं, जब कि मनुष्य भव में आ सके, ऐसे जीव अनंत है ।

जैसे भारत देश की आबादी 130 करोड से भी ज्यादा हैं, जबकि लोकसभा के सदस्य 542 लगभग हैं, ऐसी परिस्थिति में हर व्यक्ति यदि चाहे कि **'मैं लोकसभा का सदस्य बन जाऊं',** यह शक्य नहीं है, उसी प्रकार जिस भव के लिए संख्या मर्यादित है और उसके उमीदवार अनंता है, तो सभी को मानव भव की प्राप्ति कैसे सुलभ होगी ?

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और पहले-दूसरे वैमानिक तक के असंख्य देवता मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में चले जाते हैं तो दूसरे जीवों की तो क्या स्थिति होगी ! अर्थात् यह मनुष्य जन्म देवों को भी दुर्लभ है । आयुष्य समाप्ति के बाद देवता को भी मनुष्य जन्म मिलेगा, ऐसी गारंटी नहीं है । देवों को भी दुर्लभ ऐसे मानव जन्म को पाकर प्रमाद के वशीभूत होकर इस जीवन की अमूल्य क्षणों को ऐसे ही नष्ट कर देना, कितनी बडी मूर्खता है !

मानव जन्म की प्राप्ति के बाद दूसरी दुर्लभ वस्तु हैं जिनवाणी का श्रवण ! **'जिनवाणी श्रवण का अवसर मिले । यह अपना महान् पुण्योदय समझना चाहिये ।'** जिनवाणी श्रवण के बाद वीतराग के वचन पर दृढ श्रद्धा पैदा होना अत्यंत ही कठिन है ।

जो आत्मा वीतराग बन जाती हैं, वह आत्मा अवश्य ही सर्वज्ञ बनती है । जो वीतराग और सर्वज्ञ है, उन्हें झूठ बोलने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहता है, क्योंकि जो पूर्ण ज्ञानी न हो, राग-द्वेष से युक्त हो, उन्हीं का वचन असत्य हो सकता है । वीतराग के वचन पूर्ण

सत्य होने पर भी, मिथ्यात्व के उदय के कारण आत्मा, उन वचनों पर पूर्ण श्रद्धा नहीं कर पाती है, अतः जिनवचन पर श्रद्धा होना भी अत्यंत दुर्लभ है ।

जिनवचन पर श्रद्धा होने के बाद उन वचनों को जीवन में उतारना, आचरण में लाना अत्यंत ही कठिन है । `उपदेश-श्रवण अच्छा लग सकता हैं, परंतु उसका पालन तो कठिन ही है ।' अतः प्राप्त हुई चारों दुर्लभ वस्तुओं को सफल बनाने का प्रयास करना चाहिए ।

2) इंगियागार संपन्ने, से विणीए त्ति वुच्चइ ।।

अर्थात्–जो शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन करता हो, उनके पास रहता हो, गुरु के संकेतों को अच्छी तरह से समझता हो, कार्य-विशेष में गुरु की शारीरिक और मौखिक मुद्राओं को ठीक-ठीक समझ लेता हो, वही विनय-संपन्न शिष्य कहलाता है ।

जो मनुष्य सुविनीत होता हैं, उसमें निम्न लक्षण पाए जाते हैं-

(1) उद्धत-अभिमानी न हो अर्थात् नम्र हो ।
(2) चंचल न हो, बल्कि स्थिर हो ।
(3) मायावी न हो, बल्कि सरल हो ।
(4) कुतुहली न हो, बल्कि गंभीर हो ।
(5) किसी का तिरस्कार नहीं करता हो ।
(6) कदाचित् क्रोध आ जाय तो उसे लंबे समय तक टिकने नहीं देता हो ।
(7) मित्रों के प्रति पूरा सद्भाव रखता हो ।
(8) शास्त्रों से ज्ञान पाकर गर्व नहीं करता हो ।
(9) किसी के दोष देखकर उसका भंडा-फोड नहीं करता हो ।
(10) अप्रिय व्यक्ति की भी पीठ पीछे निंदा नहीं करता हो, बल्कि उसके भी गुण ही देखता हो ।
(11) किसी प्रकार का झगडा नहीं करता हो ।
(12) बुद्धिमान हो ।
(13) कुलीन हो ।
(14) आंख की शर्म रखनेवाला हो ।

उपरोक्त लक्षणों से युक्त सुविनीत मुनि, गुर्वाज्ञा पालन के फल स्वरुप शीघ्र भवसागर पार उतर जाता है ।

भव-सागर को पार उतरने के लिए गुरु रुपी नौका का आलंबन अत्यंत ही जरुरी है । नौका में वही सुरक्षित रहता हैं, जो नाविक की आज्ञा के प्रति समर्पित होता है ।

गुरु के चरणों में पूर्ण समर्पित शिष्य शीघ्र भव सागर से पार हो जाता है ।

3) जम्म दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो ।।

अर्थात्–जन्म दुःख हैं, जरा दुःख हैं । रोग और मृत्यु भी दुःख हैं । अहो ! यह संसार ही दुःखमय है, जिसमें प्राणी क्लेश पा रहे है ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा ने इस संपूर्ण संसार को दुःख रुप कहा है । संसार में नाना प्रकार के दुःख हैं अथवा यह कह सकते है कि जिस प्रकार जंगल, जंगली प्राणियों से भरा हुआ है और समुद्र, खारे जल से भरा हुआ है, उसी प्रकार यह सारा संसार दुःखों से भरा हुआ है ।

संसार में सर्व प्रथम जन्म का दुःख है । सिर्फ देवताओं को जन्म लेते समय शारीरिक पीडा का अनुभव नहीं होता हैं, बाकी तीन गतियों में जन्म के समय दुःख का पार नहीं हैं । मनुष्य को जन्म के पूर्व नौ-नौ मास तक गर्भावास की भयंकर पीडा सहन करनी पडती है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच में भी गर्भावास की पीडा सहन करनी पडती है । अंडे के रुप में पैदा होने के बाद कई बार अंडे ऐसे ही फूट जाते हैं ।

नारक जीवों का जन्म कुंभीपाक में होता है । इस प्रकार संसार में जन्म लेना दुःखरुप है । जन्म के बाद वृद्धावस्था, रोग व मृत्यु की भी पीडा कम नहीं है ।

काया जब रोगों से घिर जाती है, तब दुःख का कोई पार नहीं रहता है ।

वृद्धावस्था में भी देह व इन्द्रियाँ शिथिल-कमजोर हो जाती है ।

मृत्यु का आगमन या उसकी आशंका भी जीवन के सारे आनंद को समाप्त कर देती है । इस प्रकार संसार में दुःखों का कोई पार नहीं है ।

4) समयं गोयम ! मा पमायए ।

अर्थात्–कुश के अग्र भाग पर रही जल बुंद के समान मनुष्य का जीवन अल्प कालीन है, अतः हे गौतम ! तूं समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

प्रमाद आत्मा का भयंकर शत्रु है । प्रमाद अपने अमूल्य समय को खा जाता है । जब आत्मा प्रमाद के अधीन होती हैं, तब समय कहां बीत जाता हैं, पता ही नहीं चलता है । `प्रमाद' यह समय रुपी अमूल्य धन को खा जानेवाला राक्षस है ।

मानव जीवन की प्रत्येक क्षण आत्मसाधना के लिए है । आत्म-साधना के लिए प्राप्त `समय' व्यर्थ नष्ट न हो जाय, इसके लिए प्रतिपल सावधान रहना जरुरी है ।

भगवान् महावीर परमात्मा ने कहा है कि घास के अग्रभाग पर रहे जलबिंदु के समान यह जीवन है । जिस प्रकार पवन का एक झोंका आते ही घास के अग्रभाग पर रहा जलबिंदु क्षणभर में नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हमारा यह मानव जीवन है ।

यह जीवन किस क्षण नष्ट हो जाएगा, कुछ भी कह नहीं सकते, अतः प्रमाद छोड़कर खुब-खुब जागृत रहना चाहिये । मद्य, विषय, कषाय, विकथा और निद्रा ये मुख्यतया 5 प्रकार के प्रमाद है ।

चौदह पूर्वधर महर्षि भी प्रमाद के वशीभूत होकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं, तो फिर सामान्य मानवी की तो क्या बात करे !

हे पुण्यात्मन् ! यदि तुम अपने ज्ञान आदि आत्म-धन का रक्षण करना चाहते हो तो `प्रमाद' के भयंकर दोष से बचने के लिए सतत प्रयत्नशील रहो ।

पानी में पैदा होनेवाले बुलबुले की तरह यह जीवन नश्वर है ।

मन्दिर के शिखर पर रही ध्वजा की तरह अपना आयुष्य भी अत्यंत ही चपल है ।

अतः थोडा भी प्रमाद करने जैसा नहीं हैं । **`प्रमाद'** यह हमारे **`समय'** रुप धन को खा जाने वाला भयंकर राक्षस है । इससे सावधान न रहे तो जिंदगी की अमूल्य क्षणें ऐसे ही नष्ट हो जाती है । अप्रमत्त साधक ही मोक्ष मार्ग की साधना में तीव्रवेग से गति कर सकता है ।

5) समो निंदा-पसंसासु, समो माणावमाणओ ।।

अर्थात्–साधु पुरुष लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निंदा-प्रशंसा तथा मान-अपमान आदि हर स्थिति में समभाव में रहते हैं ।

सैनिक के वस्त्र पहिनने मात्र से कोई शूरवीर नहीं बन जाता है । पुलिस की ड्रेस पहिनने मात्र से किसी को लाठी चार्ज करने का अधिकार नहीं मिल जाता है । बस, इसी प्रकार साधु के श्वेतवस्त्र पहिन ले, इतने मात्र से कोई साधु नहीं कहलाता । साधु बनने के लिए जीवन में सद्गुणों को आत्मसात् करना अनिवार्य है ।

लाभ और अलाभ में समभाव धारण करना, साधुता का लक्षण है ।

साधु भिक्षा के लिए गया हो तब कही अनुकूल भिक्षा मिले, कही न भी मिले । अनुकूल भिक्षा प्राप्तकर साधु खुश न हो और कभी संयोगवश अनुकूल भिक्षा न भी मिले तो भी नाराज न हो, यही साधुता है ।

जीवन और मरण दोनों परिस्थितियों में समभाव रखना, साधुता का लक्षण है । अशाता वेदनीय कर्म के उदय से भयंकर शारीरिक वेदना हो तो भी साधु उस वेदना को समता पूर्वक सहन करता है, परंतु उस वेदना से विह्वल होकर कभी आर्त्तध्यान नहीं करता है । वेदना को समभाव से सहन करने से कर्मों की अपूर्व निर्जरा होती है ।

कोई व्यक्ति निंदा करे या प्रशंसा करे तो भी साधक महात्मा उन दोनों अवस्था में मध्यस्थ भाव धारण करता हैं अर्थात् अपनी निंदा सुनकर साधु आकुल-व्याकुल नहीं होता है, बल्कि निंदा करनेवाले पर लेश भी रोष किए बिना उसका उपकार ही मानता है ।

अपनी प्रशंसा सुनकर साधु खुश नहीं होता है । आत्म-प्रशंसा करने से और पर-निंदा करने से नीच गोत्र कर्म का बंध होता है । दोनों अवस्था में समभाव रखनेवाला कर्मों की अपूर्व निर्जरा करता है ।

इसी प्रकार मान और अपमान में भी साधु समभाव धारण करता है ।

कोई कितना ही सम्मान दे, परंतु साधु उस सम्मान को प्राप्तकर फूल न जाय और कोई कितना ही अपमान कर दे तो भी साधक आत्मा अपमान करनेवाले पर लेश भी गुस्सा न करे ।

मुक्ति का सच्चा साधक वो वही हैं जो लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु, निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान और अनुकूलता-प्रतिकूलता के विविध द्वंद्वों में समभाव धारण करता हो ।

6) देव दाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा ।
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ।।

अर्थात्–अत्यंत दुष्कर ऐसे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले साधक को देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर आदि सभी नमस्कार करते हैं ।

अन्य सभी व्रतों की अपेक्षा ब्रह्मचर्य व्रत की महिमा अपरंपार है । अन्य सभी व्रतों की अपेक्षा ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना अत्यंत ही कठिन है ।

मासक्षमण आदि तप करके काया को कृश कर देना आसान है, किंतु काम वासना को जीतकर मन, वचन और काया से निर्मल ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना अत्यंत ही कठिन है ।

◆ सिंहगुफावासी मुनि 4-4 महिनें के उपवास आसानी से कर सके, परंतु कोशा वेश्या के रुप के आगे हार खा गए । कोशा वेश्या के संग को पाने के लिए वे ज्ञान, दर्शन और चारित्र रुपी अमूल्य रत्नों को भी फेंकने के लिए तैयार हो गए ।

◆ चरमशरीरी स्थनेमि मुनि, राजीमती साध्वी के अद्भुत रुप-लावण्य को देखकर तत्क्षण मोहित हो गए और राजीमती के पास भोग की प्रार्थना करने लग गए ।

काम की विडंबना अत्यंत ही खराब है । काम के अधीन बने अनेक त्यागी, तपस्वी और संयमी आत्माओं का भी अधःपतन हो गया ।

जो पुण्यशाली आत्मा सद्भाव पूर्वक निर्मल ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं, उसे देव, दानव व गंधर्व भी भावपूर्वक नमस्कार करते हैं ।

ब्रह्मचर्य व्रत की महिमा अपरंपार है । इस व्रत के प्रभाव से सुदर्शन सेठ की शूली, सिंहासन में रुपांतरित हो गई थी ।

शील धर्म के प्रभाव से ही सभी नौ नारद शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करते है ।

निर्मल शीलव्रत के पालन के कारण ही प्रतिदिन प्रातःकाल सज्झाय में महासतियों का सद्भाव पूर्वक स्मरण किया जाता है ।

7) जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करं ।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ।।

अर्थात्–प्रज्वलित अग्नि-शिखा का पान करना अत्यंत दुष्कर है, उसी प्रकार तरुण अवस्था में श्रमणत्व का पालन करना दुष्कर है ।

आदमी दाने-दाने के लिए तरस रहा हो, ऐसी गरीबी की स्थिति में किया गया आधी रोटी का दान भी महा फलदायी होता है । क्योंकि उस गरीबी की स्थिति में थोडे भी दान की भावना होना अत्यंत कठिन है ।

तरुण व युवावस्था में कामवासना की उत्तेजना अत्यधिक होती हैं, उस अवस्था में कामवासना पर विजय प्राप्त करने के लिए समुचित प्रयास करना अत्यंत ही कठिन कार्य है ।

जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाओं का पान करना अत्यंत ही कठिन हैं, उसी प्रकार तरुण-युवावस्था में ब्रह्मचर्य का पालन अत्यंत ही दुष्कर कार्य है ।

पेट्रोल में छुपी हुई अग्नि को जब तक प्रत्यक्ष अग्नि का संपर्क नहीं होता हैं, तब तक वह प्रकट नहीं होती हैं और न ही जलाती है । लेकिन अग्नि का निमित्त मिलते ही पेट्रोल में भयंकर आग पैदा हो जाती हैं, बस इसी प्रकार आत्मा में भी काम, क्रोध आदि के संस्कार सुषुप्त अवस्था में पडे होते हैं, परंतु निमित्त मिलने पर वे संस्कार जागृत हो जाते हैं ।

काम-वासना के जागरण के लिए यौवन-वय एक प्रबल निमित्त है । काम वासना के संस्कार आत्मा में सुषुप्त अवस्था में पडे हुए होने पर भी यौवन के निमित्त के अभाव के कारण वे संस्कार जागृत नहीं होते हैं, परंतु यौवन के प्रांगण में प्रवेश के बाद वे काम के संस्कार जागृत होते जाते हैं । जागृत बने हुए काम के संस्कारों को नष्ट करना अथवा उन्हें दबाना अत्यंत ही दुष्कर कार्य हैं, परंतु मुक्ति की अभिलाषी बनी साधक आत्मा अपने विवेक चक्षु द्वारा मुक्ति की भद्रंकरता और संसार की भयंकरता प्रत्यक्ष जान लेती है ।

धन्य हैं उन आत्माओं को, जिन्होंने यौवनवय में दुष्कर ऐसे संयम जीवन का स्वीकार किया है ।

8) एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ।।

अर्थात्–एक व्यक्ति हजारों-लाखों योद्धाओं को युद्ध भूमि में परास्त कर सकता हैं, फिर भी वह उसकी वास्तविक विजय नहीं है, परंतु जो अपने आप पर विजय प्राप्त करता है, वह श्रेष्ठ विजय है ।

युद्ध भूमि में दुश्मन पर विजय पाने के लिए हृदय में कठोरता और क्रूरता चाहिये । जिसका हृदय कठोर व क्रूर होगा, वही व्यक्ति दुश्मन को मौत के घाट उतार सकता है, परंतु अपने आप पर विजय पाने के लिए तो जीवन में नम्रता और समता चाहिये ।

बाहर के दुश्मनों को पहिचानना बहुत आसान है और इसी कारण बाहर के दुश्मनों से लडना आसान हैं, जब कि अंतरंग दुश्मन की पहिचान होना ही कठिन है तो फिर उन दुश्मनों से लडने की बात तो कहां होगी ?

बाहर के दुश्मन का हमें जल्दी पता लग जाता है, जबकि अंतरंग शत्रु की पहिचान किसी विरले व्यक्ति को ही होती है ।

सचमायने में बाहर के दुश्मनों की पैदाश, अंतरंग दुश्मन को ही आभारी है, जब तक अपने भीतर रहा दुश्मन जीवित होगा, तभी तक हमें बाह्य दुनियाँ में अपना दुश्मन दिखाई देगा । लेकिन जिसने अंतरंग दुश्मनों को समाप्त कर दिया, उसके लिए इस बाह्य दुनिया में कोई दुश्मन नहीं होगा ।

काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष ये आत्मा के अंतरंग दुश्मन है ।

जो व्यक्ति आत्मा के इन अंतरंग दुश्मनों को जीत लेता है, वह सबसे श्रेष्ठ विजेता है ।

हजारों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके भी जो अंतरंग शत्रुओं से परास्त हो गया हैं, उसकी उस विजय की कोई कींमत नहीं है ।

भगवान महावीर का संदेश हैं-**'अपने आप पर विजय प्राप्त करो ।'**

9) अणुसासिओ न कुप्पिज्जा ।

अर्थात्–अनुशासन मिलने पर क्रोध न करें !

मोक्ष मार्ग की साधना में आगे बढने के लिए सद्गुरु का अनुशासन बहुत ही जरुरी है । जब तक छद्मस्थ अवस्था है, तब तक भूलों की पूरी-पूरी संभावना है । उन भूलों से बचने के लिए गुरु का अनुशासन बहुत ही जरुरी है ।

गुरु जब अनुशासन करे, तब शिष्य का क्या कर्तव्य होता हैं, उसके संदर्भ में महावीर प्रभु ने हितोपदेश देते हुए कहा है कि, **गुरु जब अनुशासन करे तब शिष्य को लेश भी गुस्सा नहीं करना चाहिये ।**

संसारी जीवों की लगभग यह स्थिति होती है कि उन्हें जब कोई भूल बताता हैं, तब भूल का स्वीकार करने के बजाय वे भूल बतानेवाले पर ही गुस्सा करते है ।

गुरु के द्वारा भूल बताने पर जब शिष्य उस भूल का शांति से स्वीकार कर लेता हैं, तो वह अपने जीवन में दूसरी बार होनेवाली भूल से अपने आपको बचा सकेगा ।

सच्चे गुरु वो ही कहलाते हैं, जो शिष्य के आत्महित की चिंता करते है ।

शिष्य को अपना परम सौभाग्य समझना चाहिये कि उसे अपनी भूल सुधारनेवाले गुरु का समागम हुआ है । अनादिकाल के कुसंस्कारों के कारण यह आत्मा अनेक प्रकार की भूलें करती आयी है, सद्गुरु के अभाव में अपनी भूलों को कौन सुधारेगा ?

दुर्भाग्य है उस शिष्य का, जिसे गुरु का अनुशासन प्रिय नहीं लगता है । जिस शिष्य को गुरु का अनुशासन प्रिय नहीं लगता हो, वह शिष्य वास्तव में शिष्य कहलाने के लिए लायक नहीं है, ऐसा शिष्य स्व-पर का अहित ही करता है ।

आत्महित के इच्छुक मुनि को गुरु का अनुशासन अत्यंत ही प्रिय लगना चाहिये ।

43

ओघ निर्युक्ति-पिंड निर्युक्ति

चौथा मूल सूत्र–**ओघ निर्युक्ति-पिंड निर्युक्ति सूत्र** है । ये दोनों स्वतंत्र ग्रंथ है । दोनों के रचयिता 14 पूर्वधर महर्षि श्री भद्रबाहु स्वामीजी महाराज है ।

ओघ निर्युक्ति सूत्र का मूल 811 श्लोक प्रमाण है । भाष्य, चूर्णि, टीका आदि कुल मिलाकर इस सूत्र के आधार पर 23,336 श्लोक प्रमाण साहित्य रचा गया है । **इस सूत्र को श्री भद्रबाहु स्वामीजी ने प्रत्याख्यान प्रवाद नाम के नौवें पूर्व के बीसवें ओघ प्राभृत में रही ओघ, पदविभाग और चक्रवाल सामाचारी में से ओघ सामाचारी का यहाँ पर संकलन किया है ।**

ओघ अर्थात् संक्षेप से । साधु जीवन संबंधी समस्त छोटी बड़ी बातों का वर्णन इस सूत्र में संक्षेप से किया गया है । इस सूत्र में सात द्वार है–

1. प्रतिलेखना द्वार – इसमें प्रतिलेखन करने वाले साधु का, दो प्रकार की प्रतिलेखना और पाँच प्रकार की प्रतिलेखना का वर्णन है ।

2. पिंड द्वार – पिंड दो प्रकार का–द्रव्यपिंड और भाव पिंड । द्रव्य पिंड में–सचित्त, अचित्त और मिश्र पिंड तथा गवैषणा, ग्रहणैषणा और ग्रासैषणा रूप तीन पिंड और तीन एषणा का वर्णन है तथा प्रशस्त और अप्रशस्त रूप दो भाव पिंड का वर्णन है ।

3. उपधि द्वार – द्रव्य से शरीर को और भाव से संयम को जो उपकारक है वह उपधि । उसमें नित्य धारण करने योग्य उपधि–ओघ उपधि और विशेष कारण पर धारण करने योग्य उपधि–उपग्रह उपधि है । संख्या की अपेक्षा साधु को 14 और साध्वी को 25 प्रकार के वस्त्र की उपधि होती है ।

4. अनायतन वर्जन द्वार – छोडने योग्य स्थान अनायतन है और उपयोग करने योग्य स्थान आयतन है । अनायतन दो प्रकार के–द्रव्य अनायतन और भाव अनायतन ।

रुद्र लोगों के घर द्रव्य अनायतन है । वेश्या, दासी, तिर्यंच आदि जहाँ

रहे हो वह लौकिक भाव अनायतन है और रत्नत्रयी की हानि होती हो वैसे कुशील साधु आदि का संग लोकोत्तर भाव अनायतन है ।

5. प्रतिसेवना द्वार – चारित्र के पालन में जो विरुद्ध और दोषित आचरणा है, उसे प्रतिसेवना कहते है । द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव से अप्रतिबद्ध साधु प्रतिसेवना से बचकर निर्मल संयम जीवन का पालन कर सकते है ।

6. आलोचना द्वार – मूल गुण और उत्तर गुण संबंधी आलोचना मात्र चार कानवाली होनी चाहिए । आलोचक साधु के दो कान और प्रायश्चित्त दाता के दो कान ये चार कान कहलाते है । आलोचना लेते समय बालक जैसा बनकर, माया का त्याग करना चाहिए तथा गुरुदत्त प्रायश्चित्त को पूरा करना चाहिए ।

7. विशुद्धि द्वार – साधक के जीवन में दोष की संभावना आठ प्रकार से होती है–

1. अचानक, 2. अज्ञानता, 3. भय, 4. अन्य की प्रेरणा, 5. आपत्ति, 6. रोग की पीड़ा, 7. मूढता, 8. राग–द्वेष । इन कारणों से मूल गुण–उत्तर गुण में जो भी विपरीत आचरण हुआ हो तो आत्मशुद्धि के इच्छुक को शल्यरहित आलोचना कर विशुद्ध बनना चाहिए ।

पिंड निर्युक्ति सूत्र का मूल 671 श्लोक प्रमाण है । श्री दशवैकालिक सूत्र के पाँचवे `पिंडैषणा अध्ययन' पर पूज्यश्री भद्रबाहुसूरीश्वरजी महाराज ने इसकी रचना की है । भाष्य, वृत्ति, लघुवृत्ति और अवचूरि आदि इस आगम पर कुल मिलाकर 16,938 श्लोक प्रमाण साहित्य रचा गया है ।

पिंड अर्थात् साधु की भिक्षा । साधु को भिक्षा में क्या कल्प्य है ? क्या अकल्प्य है ? भिक्षाचर्या में संभवित कितने दोष है ? इनका वर्णन इस ग्रंथ में किया गया है ।

दोष रहित भिक्षा की शोध करना, गवैषणा है । जिसमें उद्‌गम के 16 दोष और उत्पादन के 16 दोषों को जानकर उनका त्याग करना, गवैषणा शुद्ध पिंड है । प्राप्त हुई दोष रहित भिक्षा को ग्रहण करना वह ग्रहणैषणा है । जिसमें 10 दोष को जानकर उनका त्याग करना, ग्रहणैषणा शुद्ध पिंड है ।

गवेषणा और ग्रहणैषणा से शुद्ध भिक्षा को निर्मम भाव से मांडली के पाँच दोषों को त्याग करना ग्रासैषणा शुद्ध पिंड है । इन 47 दोषों को त्याग कर साधु की भिक्षा सर्वथा शुद्ध होती है ।

44

दो मूल सूत्र

1. नंदी सूत्र

पैतालीस आगम में अंतिम दो सूत्र चूलिका सूत्र रुप में है । जिन बातों का वर्णन 43 आगमों में वर्णन नहीं किया गया है, ऐसे अनेक पदार्थ इन दोनों सूत्र में बताए गए है । इनमें प्रथम–**नंदीसूत्र** है । इसके रचयिता **श्री देववाचक गणि** भगवंत है ।

नंदीसूत्र प्राकृत भाषा में रचा गया परम मांगलिक सूत्र है । इसका मूल 700 श्लोक प्रमाण है । जिस पर 1500 श्लोक प्रमाण श्री जिनदास गणि रचित चूर्णि है, 2336 श्लोक प्रमाण पूज्य श्री हरिभद्रसूरिजी रचित लघु वृत्ति है तथा 7732 श्लोक प्रमाण पूज्य मलयगिरिजी महाराज रचित बृहद्वृत्ति है । इसके अतिरिक्त 3300 श्लोक प्रमाण पूज्य आ. श्री चन्द्रसूरिजी महाराज रचित विषम पद पर्याय है । अन्य साहित्य मिलाकर कुल 16437 श्लोक प्रमाण साहित्य इस ग्रंथ पर रचा गया है ।

नंदी शब्द के लक्षणवंत वृषभ, मंगल वाद्ययंत्र, आनंद, सम्यग्ज्ञान आदि अनेक अर्थ होते है । यहाँ आनंद और सम्यग्ज्ञान के अर्थ में नंदी शब्द का प्रयोग है ।

श्रावक जीवन संबंधी व्रत स्वीकार, तप उच्चरण, तीर्थमाला आदि एवं साधु जीवन संबंधी दीक्षा, बडी दीक्षा, योगोद्वहन, गणि-पंन्यास पद प्रदान के समय संक्षेप में श्री नंदी सूत्र पढ़ा जाता है तथा आचार्य पदवी के प्रसंग पर संपूर्ण नंदी सूत्र पढा जाता है । परम मंगलदायी इस आगम का नाम, विषय और श्रवण भी आनंदकारी है ।

इसका मूल विषय सम्यग्ज्ञान है । मतिज्ञान–श्रुतज्ञान–अवधिज्ञान–मनःपर्यव ज्ञान और केवलज्ञान रुप पाँच ज्ञान एवं उनके भेद का विस्तार से वर्णन किया गया है ।

प्रारंभ में 18 गाथा द्वारा भगवान महावीर की स्तवना है । फिर श्री संघ को नगर, चक्र, रथ, कमल, चन्द्र, सूर्य, समुद्र और पर्वत की उपमा देकर वंदन किया है । चौबीस तीर्थंकरों के नामोल्लेख के साथ वंदन कर, गौतम स्वामी आदि 11 गणधर, जंबूस्वामी से लेकर रचयिता के अंतिम उपकारी गुरुभगवंत पू. श्री दूष्यगणि महाराज तक के महापुरुषों को वंदन किया हैं ।

पश्चात् श्रोता के ज्ञायिक, अज्ञायिक और दुर्विदग्ध रुप तीन भेद बताकर पाँच ज्ञान के भेद–प्रभेद का सुंदर शैली में वर्णन किया है । सभी जीवों को आश्रय कर एक मजेदार बात बताई है कि **''सभी जीवों में अक्षर के अनंतवे भाग जितने आत्म-प्रदेश हमेशा कर्म से अलिप्त है । यदि किसी जीव का यह भाग भी कर्म से आवृत हो जाय तो वह जीव, अजीव बन जाएगा ।''** (श्लोक 77) अनंत काल में ऐसा कभी बनता नहीं और बनेगा नहीं, मात्र जीव में ही रहे ज्ञान का महत्त्व बताया है ।

45

अनुयोग द्वार

रेल गाडी में सबके अंत में गार्ड का डिब्बा होता है । जैसे पूरी गाडी गार्ड के ईशारों पर चलती है वैसे ही सबसे अंतिम परंतु सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ यानी **श्री अनुयोग-द्वार** सूत्र ।

ऐसा माना जाता है, कि इस सूत्र की रचना वीर संवत 592 विक्रम संवत 122 के आसपास के काल में साढे नौ पूर्व के ज्ञाता पूज्य **आचार्य श्री आर्यरक्षितसूरिजी महाराज** ने की थी, आगम साहित्य का प्रमाण अति विशाल है, अतः समयानुसार इन आगम सूत्र को भिन्न–भिन्न रुप से विभाजित किया गया है–

पहला विभाग–पूर्व और अंग ।

दूसरा विभाग–अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य ।

तीसरा विभाग–चार अनुयोग ।

पूज्य श्री वज्रस्वामीजी के पश्चात् श्रुत को धारण करने की शक्ति में मंदता को देखते हुए पूज्य आचार्य श्री आर्यरक्षितसूरिजी ने विद्यमान आगमों को चार अनुयोग में विभाजन किया था । तत्पश्चात् आगम ग्रंथों पर जो भी साहित्य का निर्माण हुआ, वह प्रायः इस अनुयोग के आधार पर ही हुआ है ।

अनुयोग शब्द अनु और योग शब्द के संयोग से बना है । अनु अर्थात् अनुकूल तथा योग अर्थात् संयोग कराना । सूत्र के साथ अनुकूल, अनुरुप और सही अर्थ का संयोग करना अनुयोग है । व्याख्यान करने योग्य व्याख्येय वस्तु के आधार पर अनुयोग के मुख्य चार भेद है ।

1. चरणकरणानुयोग – साधु और श्रावक के पंचाचार संबंधी पदार्थों का निरुपण करना चरणकरणानुयोग है । जैसे आचारांग सूत्र आदि ।

2. धर्मकथानुयोग – धर्म और धर्मी की कथा का वर्णन करना, धर्मकथानुयोग है । जैसे–उत्तराध्ययन सूत्र आदि ।

3. गणितानुयोग – गणित के माध्यम से पदार्थों का निरुपण करना गणितानुयोग है । जैसे–सूर्य प्रज्ञप्ति आदि ।

4. द्रव्यानुयोग – जीव–अजीव, लोक–अलोक, पुण्य–पाप, बंध–मोक्ष आदि तत्त्व का बोध करना द्रव्यानुयोग है । जैसे दृष्टिवाद आदि ।

इस सूत्र का मूल लगभग 2000 श्लोक प्रमाण है, जिसपर पूज्य आचार्य श्री जिनदास महत्तर रचित 2265 श्लोक प्रमाण चूर्णि है पूज्य आचार्य श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी रचित 3000 श्लोक प्रमाण शिष्यहिता टीका है, और पूज्य आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी रचित 5900 श्लोक प्रमाण बृहद्वृत्ति है ।

सूत्र के प्रारंभ में पाँच ज्ञान का वर्णन कर मंगलाचरण किया है । फिर आवश्यक अनुयोग का उल्लेख किया है, उसमें उपक्रम आदि का विवेचन किया गया है । विवेचन की क्रिया कैसी होनी चाहिए । उसे बताने के लिए ग्रंथकार ने आवश्यक, श्रुत-स्कंध का दृष्टांत लेकर उपक्रम, निक्षेप, अनुक्रम और नय रुप चार द्वारों से की है ।

1. उपक्रम – जिस विषय का वर्णन करना हो उस ग्रंथ के सार को संक्षेप में बताना उपक्रम है । इससे पदार्थ, निक्षेप के योग्य बनते है । ग्रंथ में सबसे अधिक विस्तार इस उपक्रम का ही वर्णन है । निक्षेप, अनुगम और नय के विषय की महत्त्वपूर्ण जरुरी बातें भी इसमे समझा दी है ।

2. निक्षेप – नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव–ये चार निक्षेप जघन्य से प्रत्येक पदार्थों को समझने में उपयोगी होते है । इनमें भाव निक्षेप सबसे मुख्य है ।

3. अनुगम – सूत्र के शब्दों को यथार्थ भाव के साथ जोडना वह अनुगम है । आगम को समझने उनके शब्दार्थ, वाक्यार्थ और भावार्थ को समझने की प्रक्रिया यहाँ बताई है ।

4. नय – पदार्थ को समझने की दृष्टि नय है । नय के सात प्रकार है– 1. नैगम, 2. संग्रह, 3. व्यवहार, 4. ऋजुसूत्र, 5. शब्द, 6. समभिरूढ, 7. एवंभूत । ग्रंथकार ने संक्षेप में इन सात नयों का वर्णन किया है ।

व्याख्या की प्रक्रिया को समझने यह आगम अति उपयोगी होता है । आगमों की व्याख्याओं के तालों को खोलने में यह आगम चाबी के समान अति महत्त्वपूर्ण है ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न, पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 239 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	37.	मोक्ष मार्ग के कदम	120/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	38.	विविध देववंदन	100/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	39.	समाधि मृत्यु	50/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	40.	संस्मरण	50/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	41.	भव आलोचना	10/-
6.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-	42.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
7.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	43.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
8.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	44.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
9.	विविध-तपमाला	100/-	45.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
10.	विवेकी बनो	90/-	46.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
11.	प्रवचन-वर्षा	60/-	47.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
12.	आओ श्रावक बनें !	25/-	48.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
13.	व्यसन-मुक्ति	100/-	49.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
14.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	50.	नमस्कार मीमांसा	150/-
15.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	51.	परमेष्ठि-नमस्कार	180/-
16.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	52.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-
17.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	53.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
18.	समाधि मृत्यु	80/-	54.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
19.	Pearls of Preaching	60/-	55.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
20.	New Message for a New Day	600/-	56.	वैराग्य-वाणी	140/-
21.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	57.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	160/-
22.	अमृत रस का प्याला	300/-	58.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
23.	ध्यान साधना	40/-	59.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
24.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	60.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
25.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-	61.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
26.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	62.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
27.	प्रेरक-प्रवचन	80/-	63.	मन के जीते जीत है	80/-
28.	जीव विचार विवेचन	100/-	64.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-1	300/-
29.	नवतत्त्व विवेचन	110/-	65.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-2	300/-
30.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	66.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-1	280/-
31.	लघु संग्रहणी	140/-	67.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-2	300/-
32.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-	68.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
33.	कर्मग्रंथ (भाग-1)	160/-	69.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
34.	दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	55/-	70.	वैराग्य-शतक	140/-
35.	गणधर-संवाद	80/-	71.	आनन्दघन चौबीसी विवेचन	200/-
36.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-	72.	धर्म-बीज	140/-
			73.	45 आगम परिचय	200/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 (only whatsapp)